सहकारी खेती

एडस्सेरी गोविन्दन नायर

सहकारी खेती

लेखक :
एडस्सेरी गोविन्दन नायर

अनुवादक :
के० रवि वर्मा

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

सब राजनीतिक दलों का अंग रहते हुए भी
जिन्होंने अपने हृदय को उनकी दलदल से अछूता रखा
ऐसे अपने मित्र

श्री डी० गोपाल कुरुप्प को

भूमिका

"आपका नाटक जीवन्त हो तो उसकी गिनती साहित्य में अवश्य होगी। अगर ईमानदारी के साथ भीतर पैठकर अपने भाई नागरिकों का आपने अध्ययन किया, अपने विशिष्ट चरित्र से हमारा मनोरंजन करने वाले और शाश्वत मानव-मूल्य रखने वाले पात्रों को उनमें से चुन लिया, उन विशिष्ट व्यक्तियों का अध्ययन करते समय उनके वार्तालापों, कार्य-कलापों और मनो-वृत्तियों के बीच से सही चुनाव करके उन्हें एक ही साथ व्यक्ति और वर्ग-प्रतिनिधि बनाने वाले वार्तालापों, कार्य-व्यापारों और मन:स्थितियों को आपने ग्रहण किया, उन उपादानों का अनु-शीलन करके उन्हें सटीक रूप दिया तथा विकसित होती हुई और अंत में एक बिन्दु पर केन्द्रित होती हुई कथा के रूप में आप उसे अभिनीत कर सके तो भले ही वर्तमान समाज के दैनिक व्यवहार में आने वाले शब्दों के अतिरिक्त एक भी शब्द का व्यव-हार न किया गया हो, मैं कहूँगा कि आपने एक जीवन्त नाटक की रचना की, एक ऐसी साहित्यिक कृति की; जो अभिनीत होने पर मनोरंजक रहेगी ही, अलावा इसके एक कलात्मक रचना के नाते जिसे अध्ययन-कक्ष में बैठे आह्लादपूर्वक पढ़ा भी जा सकेगा, उस पर चर्चाएँ-बहसें की जा सकेंगी, इसलिए कि उसमें जीवन के लिए ज़रूरी पौष्टिक तत्त्व भरा रहता है।"

—हेनरी आर्थर जोन्स

इडस्सेरी गोविन्दन नायर के 'सहकारी खेती' (कुट्टु कृषि) नाटक के संदर्भ में यह लंबा-सा उद्धरण मैंने जो उपस्थित किया, इसके लिए क्षमा-याचना करना मैं ज़रूरी नहीं समझता। कारण इन वाक्यों में प्रतिपादित एवं मलयालम साहित्य के लिए एकदम एक अभूतपूर्व चमत्कार श्री इडस्सेरी ने कर दिखाया है। एक ऐसा कथानक, जिसे नाट्यशाला में प्रदर्शित करने पर सबको आकृष्ट किया जा सकता है, और एक ऐसा लघु साहित्य, जो अध्ययन-कक्ष में बैठकर पढ़ते समय उत्कृष्ट काव्यानन्द प्रदान करता है, एक साथ लेखक ने हमें भेंट किया है। अतः सचमुच वे बधाई के पात्र हैं।

लेकिन 'सहकारी खेती' का महत्त्व इससे भी कुछ अधिक है। नाटक प्रचार का सफल माध्यम होता है। शायद ही कोई अन्य विधा इसका मुकाबला कर सके। बर्नार्ड शा ने कहा है—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि सबसे सार्थक प्रचार का माध्यम ललित कलाएँ ही हैं, यदि उनमें से व्यक्ति-व्यापार को अलग रखा जाय। और नाट्य-कला का जहाँ तक सम्बन्ध है, इसकी भी जरूरत नहीं। कारण पर्यवेक्षण और मनन की शक्ति से वंचित रहने के कारण वास्तविक जीवन से कुछ भी ग्रहण न कर पाने वाले जन-साधारण के लिए सुगम और उत्तेजक ढंग से व्यक्तियों के व्यापार का प्रदर्शन ही तो नाटक में होता है।" नाटक के इस प्रचार-माध्यम का इडस्सेरी ने सफल प्रयोग किया है। सचमुच 'सहकारी खेती' एक सहकार-प्रयोग ही है। नाटक, साहित्य और प्रचार तीनों कलाओं के सहयोग से एक उत्कृष्ट फसल लेखक काट पाए हैं।

'सहकारी खेती' एक सफल नाटक क्यों बन पाया? सर्वप्रथम

'पोन्नानि' (मध्य केरल का एक गाँव) में आयोजित एक समारोह में अक्किक्त्तम (केरल के प्रसिद्ध कवि), पी० सी० कुट्टिकृष्णन (प्रसिद्ध उपन्यासकार) आदि ने इसे अभिनीत किया था। उस समय दर्शकों में जिस आलोड़न और तन्मयता का संचार हुआ था, वह असाधारण था। इस प्रभाव के पीछे न कोई उत्तम अभिनय था, और न रंग-संविधान। उसके भूमिकाकार पेशेवर अभिनेता भी न थे। मंच-सज्जा तो एकदम घटिया थी। असल में नाटक की कथावस्तु ही दर्शकों को आकृष्ट कर सकी थी। 'सहकारी खेती' जीवन्त ग्रामीण जन-जीवन की ओर ढलता झरोखा है, जैसा कि इब्सन ने कहा है। इडस्सेरी ने भी अपने परिचित या दृष्टपूर्व कुछ व्यक्तियों की अनुभूति या श्रुतपूर्व कुछ तथ्यों को प्रकाश में लाकर उन सबके ऊपर कविता का वातावरण तान लिया है और उनमें एक आत्मा को फूंक दिया है। 'सहकारी खेती' के सभी पात्र पोन्नानि और उसके आस-पास के बाशिन्दे हैं। श्रीधरन्, सुकुमारन्, पार्वती, पोकर और लक्ष्मी अम्मा क्षयोन्मुख एक नायर-परिवार के गौरव की रक्षा करते हुए सम्मानित जीवन-निर्वाह करने के प्रयत्न में लगे युवक, और वात्सल्यवश उनके बदलते नवीन दृष्टिकोण से समझौता कर लेने वाली माता—हमारे गाँवों से अभी यह वर्ग एकदम गायब नहीं हो गया है। उसी वर्ग के प्रतिनिधि हैं इस नाटक के सभी पात्र—जो नाटककार के अपने ही वर्ग से आये हैं। वेलु-जैसे परिश्रमी काश्तकार गली के हर नुक्कड़ पर मिलते हैं। हो सकता है कि धर्म-सहिष्णु, दरियादिल अबूबेकर-जैसा मध्यवयस्क असाधारण-सा लगे, मगर एकदम असम्भव तो यह भी नहीं। उसकी सन्तान आयिशा और बापू बिलकुल साधारण पात्र हैं। राशन की दुकान

चलाकर छोटी किस्म के साहूकार की हैसियत पाने वाला पोक्कर, मुकद्दमेबाज़ नंपियार, पहलू-भर ईर्ष्या और जलन के बावजूद देर-सबेर ही सही, हवा का रुख समझने वाला कृषक सहज गँवई विवेक रखने वाला वारियर और परङ्ङोटन आज भी गाँवों में मिलेंगे।

'सहकारी खेती' का हर पात्र रक्त-मांसमय देह व आत्मा से युक्त मानव है, जो घात-प्रतिघातों के बीच से उभर आने वाले व्यक्तित्व के कारण अविस्मरणीय है। वे नाटककार के सूत्र-संचालन के अनुसार नाचने वाले पुतले नहीं। साहित्य की प्रचार-क्षमता को पहचानकर उसका अचूक प्रयोग करने वाले मैक्सिम गोर्की का कथन यहाँ स्मरण हो आता है—"नाटककार की इच्छा-शक्ति के दबाव में न आकर निजी वैयक्तिक रुझान और सामाजिक परिवेश के नियमों के अनुसार ही नाटक के पात्रों को चलना चाहिए। उनको चाहिए कि अपनी-अपनी नियति की प्रेरणा-शक्ति का अनुसरण करें, जो कि नाटककार द्वारा ओढ़ाई गई प्रेरणा-शक्ति का अनुसरण करे। उनको चाहिए कि अपने आत्म-प्रचोदनों से परिष्कृत दुःखान्त या सुखान्त घटनाओं और आख्यानों का निर्माण करें, अपने परस्पर-विरोधी स्वभाव, रुझान और संवेदनों के अनुरूप चलते हुए नाटक की अग्रगति को नियंत्रित करें।" इस कथन का मतलब इतना ही है कि साहित्य को प्रचार का माध्यम बनाना चाहने वाले लेखक को अपनी समझदारी अपने आदर्श और विचारों से ताल-मेल रखने वाले प्रसंगों व पात्रों के चुनाव में दिखानी चाहिए। एक बार यह चयन हो जाने के बाद उन पात्रों पर या प्रसंगों पर दखल देने का नाम कला-संसार होगा। गोर्की ने कहा है—

"नाटककार को अपने पात्रों से ऐसा बर्ताव करना चाहिए जैसा कि अतिथियों को भोज में न्योता देने वाले मेज़बान का होता है। भले ही अतिथियों में से कोई दूसरे को हद दर्जे की तकलीफ पहुँचाए, आतिथेय उसमें दखल नहीं दे सकता। उसका कर्त्तव्य इतना ही है कि ठंडे दिल से अतिथियों के व्यवहार को देखता जाय।" गोर्की का आदर्श इस नाटक के पात्रों के सम्बन्ध में अक्षरशः सार्थक दिखता है। इस अतिथिशाला में आतिथेय की आवाज़ सुनाई नहीं पड़ती। वह नेपथ्य में बैठा पान चबाता जाता है और अतिथियों के उलझते-सुलझते संघर्षों से मनोरंजन करता जाता है। इसीलिए इसके पात्र जीवन्त मानव बने। वे दर्शकों का कौतुक धक्का देकर जगाते हैं। आखिरी यवनिका-पतन तक यह सवाल उनके मन में सक्रिय रहता है कि आगे क्या होगा ? इन पात्रों की नियति को दर्शक अपनी ही नियति महसूस करते हैं।

'सहकारी खेती' में एक सशक्त कथानक है। कई समालोचकों की राय में यह जरूरी नहीं कि नाटक में कोई कथानक रहे। कुछ प्रसिद्ध नाटककारों ने निरे वार्तालाप वाले दृश्यों से शिथिल कथानकयुक्त नाटक भी रचे हैं। मगर यह निर्विवाद है कि शाश्वत मूल्य वाले उत्तम नाटकों का कथानक भी उत्तम होता है। प्रस्तुत नाटक का कथानक भी एक नीति-कथा की तरह सरल-सहज और जीवन के प्रकृत तथ्यों पर आधारित है। इसमें कोई चौंका देने या चमत्कृत करने वाली घटना नहीं है। इस नाटकीय तत्त्व को कि कोई भी रहस्य दर्शकों से न छिपाया जाय, लेखक ने अंत तक निभाया है। पात्रों के स्वभाव-वैचित्र्य से कथानक सहज ही शाखा-प्रशाखाओं में तनता जाता है। नंपियार

के मंच पर प्रवेश करते ही यह निश्चित-सा हो जाता है कि दस्तावेज लिख-लिखकर घिसे उसके हाथों से पोक्कर को वह दंड मिल जायगा, जो असल में उसे मिलना चाहिए, जिसकी दर्शक भी कामना करते हैं। कविता-जैसे सनकी दिल का कच्चा सुकुमार और मुग्धा आइशा जब एक-दूसरे के पास आ जाते हैं तो यह अनिवार्य हो जाता है कि प्रेम की गरमी में उनका हृदय पिघलकर एक हो जाय। सांप्रदायिक वैर और गलतफ़हमी से अंधे बापू की आँखें खोलने के लिए बहन का स्नेह पर्याप्त है। कथा के गठन में कोई अंश ऐसा नहीं, जिसे तोड़ा-मरोड़ा हो या ठोक-पीटकर पतला किया गया हो। इसी तरह अंतिम संधि में एक-दूसरे से हिले-मिले बिना अलग-थलग हवा में झूलने वाला कोई भी रेशा इसमें नहीं। यों ही गुदगुदाकर हँसाने के लिए एक शब्द भी उच्चरित नहीं किया गया है। हर शब्द, हर कार्य और पात्र मुख्य कथानक के लिए अनुपेक्षणीय है। इनमें किसी एक की कमी से कथानक में कटाव आ जाता है। अगर यह कहावत सही हो कि संक्षेपण और परिहरण की कला और शास्त्र संकेत है तो एक प्रकृत कलाकार का सांकेतिक परिचय और हस्तलाघव इस संक्षेपण और परिहरण में दिखाई देगा।

नाटक का मुख्य घटक है संवाद, जो पात्रों के चरित्र का अनावरण करता है। संवाद ही कथानक को सीढ़ी-दर-सीढ़ी आगे बढ़ाता है। नाटक के वातावरण और परिवेश का निर्माण भी उसीसे होता है। इस नाटक का संवाद ऐसा है जिसे हम दैनिक जीवन में अक्सर सुनते आ रहे हैं, जो खेत के कीचड़, ढोर और फूँस की गन्ध लिये हुए है। साथ ही ठेठ गँवई हास-परिहास से रसीला भी। मगर ऐन मौक़े पर यह सरस संवाद गांभीर्य भी

ले लेता है। अर्थ-गंभीरता से स्वर वज़नदार हो जाता है। शब्द वे ही, जो आमफ़हम हैं, मगर वे तगड़े काँसे के घंटों की तरह गूँजने लगते हैं। अन्तिम दृश्य का यह संवाद ही लीजिए—

"**श्रीधर**—हम प्रतीक्षा करेंगे। सब्र के साथ प्रतीक्षा करते रहेंगे। आज जिस तरह सहकारी खेती से हम सम्पन्न हुए वैसे ही अगली फसल में हम सम्पन्न नई पीढ़ी को उपजायँगे।

(सुकुमारन् और आइशा आहें भरते हैं। सब उनकी ओर देखते हैं। जैसे आहें उन लोगों ने सुन ली हों। दोनों सिर झुकाते हैं।)

अबूबेकर— (दोनों को बारी-बारी से देखते हुए) या अल्ला! अब इसकी क्या तरक़ीब है?"

"अब इसकी क्या तरक़ीब है?" नाटक देखकर वापस जाने वाले हर दर्शक के दिमाग में यह सवाल गूँजता रहता है। मगर अब वे उपाय जान चुके हैं। नाटक ने उन्हें उपाय सुझा दिया है। इतनी बड़ी अभिव्यंजना-शक्ति इन शब्दों में कैसे आई?

समस्या-प्रधान नाटक लिखते समय अक्सर लेखक भूल जाते हैं कि 'एक्शन' ही नाटक का प्राण है। इसलिए नाटक संवादों का गुच्छा-मात्र रह जाता है। यह निष्क्रियता अक्सर दर्शकों को उबा देती है। पढ़ते समय अच्छा लगने वाले कुछ नाटकों के अभिनीत होने पर बेमज़ा लगने का कारण यही है। 'सहकारी खेती' में क्रिया का मुख्य स्थान है। उसका स्फटिकोपम संवाद क्रिया को कभी पीछे नहीं धकेलता। जोतना, बोना, निराना, बालों से धान अलग करना, भूसा निकालना—कृषक-जीवन के सभी रंगीन पहलू मंच पर आते हैं। एक भी दृश्य निष्क्रिय नहीं।

निरे वार्तालाप से नीरस नहीं। अक्सर नाटककार नाटक के शुरू और अंत में फिसलन का शिकार बन जाते हैं। मुख्य कथा-पात्रों, उनके विगत इतिहास, वर्तमान हालत और उनके आपसी सम्बन्ध को समझाने में कुशल नाटककार भी प्रारम्भ में बहुत समय लगा देते हैं। इसके बाद कहाँ से अभिनय शुरू होता है—इसको कई प्रसिद्ध नाटकों में भी आसानी से रेखांकित किया जा सकता है। इसी तरह घटनाओं का मोड़ पार कर जाने के बाद उपसंहार के समय इधर-उधर लटक पड़ने वाले कथा-तंतुओं को सँवारने-सँजोने के पचड़े में नाटककार फँसता नज़र आता है। 'सहकारी खेती' में पहले दृश्य का पर्दा उठने के साथ घटना-क्रम भी शुरू हो जाता है। पात्र-परिचय आदि बातें अनायास ही किसी के अनजाने में ही हो जाती हैं। यह खूबी अंत तक दिखाई पड़ती है। 'ठहरो, अब कुछ सफाई दूँ, इसके बाद आगे बढ़ना–" यों नाटककार एक बार भी हमसे कहता-सा नहीं लगता। अंत में आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों के मेड़ पर खुरपी मारने के लक्ष्य तक पहुँचने पर न केवल अबूबेकर और श्रीधरन् की, परङ्ङोटन और वारियर की खुरपियाँ भी मेड़ पर पड़ती दिखाई देती हैं। आम मंजिल पर सभी पात्र और घटनाएँ आ जुड़ती हैं।

इस नाटक के दो स्थानों पर समालोचक आक्षेप उठा सकते हैं। तीसरे अंक का चौथा दृश्य तो पूरा-का-पूरा स्वगत-भाषण है। नाटक में स्वगत के लिए अब स्थान नहीं है। यह तकनीक की दृष्टि से एक त्रुटि है। मगर किसी का खून करने पर उतारू व्यक्ति की धधकती मनःस्थिति को स्पष्ट करने का और उपाय ही क्या है ? और जब असल में वह चाकू हाथ में उठा लेता है, स्वगत-भाषण संवाद में बदल जाता है। बर्नार्ड शा के नाटक के

सीसर और सिहिला के एकांगीय भाषण की तरह तकनीक की दृष्टि से इसे जो कुछ भी माना जाय, यह स्वगत-भाषण दर्शकों पर अच्छा प्रभाव डालता है। हेनरी बैथेल के शब्दों में नाटक की शैली प्रत्यक्ष या यथार्थ में जीवन की निरी नकल नहीं है, उसके संवाद, संदर्भ या पात्र का स्वाभाविक परिणाम-मात्र हैं। पात्र इसके माध्यम से अपने विचारों के साथ दर्शकों के सामने सब-कुछ खुलासा करते हैं।

दूसरी शिकायत तीसरे अंक के पहले दृश्य के बारे में हो सकती है। नंपियार, जो थाने में झूठी रपट लिखवाने जाता है, चन्द मिनट में लँगड़ाता मुँह छिपाता प्रवेश करता है। थाने में अक्सर जो जिरह-जबरदस्ती का रिवाज़ होता है, उसके लिए क्या इतना कम समय काफ़ी है? नंपियार द्वारा कलाबाजी का बहाना करना नाटककार की कलम की खूबी का अच्छा उदाहरण है। मगर आधुनिक नाटककार के लिए समय का ख़याल न करना ठीक नहीं जँचता।

इसीलिए इन बातों पर विचार किया गया कि 'सहकारी खेती' अभिनीत करने के लिए रचा गया नाटक है और यही तो नाटक का मुख्य लक्ष्य होता है। इसके अलावा यह एक सुन्दर काव्य बन पड़ा है। जीवन की अनुभूतियों का आत्मा में उमड़ पड़ना ही तो सभी कलाओं का उत्स होता है। जब ये अनुभूतियाँ बहिः प्रकाशन के लिए मचलती हैं तो कलाकार सृजनोन्मुख हो जाता है। और इस तरह हम सृजित कला में अपने सक्रिय और इसलिए परिवेश की ओर न जमने वाली दृष्टि से ओझल मानव-जीवन का सुन्दर प्रतिफलन, पूर्णता, और व्याख्या पाते हैं। परिस्थितियों से निर्मित बाधाओं से भिड़ते हुए आगे बढ़ने

वाले पुरुषार्थ का विकास इसमें हम देखते हैं। हमें सीमाबद्ध और विवश करने वाली सामाजिक ताक़तों, व्यक्तियों की मूर्खताओं, पूर्वाग्रहों और कुत्सित स्वार्थों से संग्राम करने के लिए जान-बूझ-कर मंच पर छोड़े गए अपने कुछ सहजीवियों से, हम इस नाटक में साक्षात्कार करते हैं। जीवन और व्यक्तित्व का प्रतिफलन, संक्षेपण, व्याख्या और मनुष्यत्व का साक्षात्कार हम इसमें देख सकते हैं। यही तो साहित्य में हम खोजते हैं। इस नाटक की भाषा पर पहले ही अपना विचार स्पष्ट किया जा चुका है। जोतने और निराने के सन्दर्भ में गाये गए भाव-गीत नाटक की सर्वांगीण काव्यात्मकता के साथ हिल-मिल गए हैं।

हमारे यहाँ की दो फड़कती हुई आर्थिक-सामाजिक समस्याओं के हल की ओर प्रस्तुत नाटक संकेत करता है। आर्थिक समस्या यह कि ज़मींदारी-प्रथा कैसे समाप्त की जा सकती है; और टुकड़ों में बँटे और इसलिए किसानों को घाटे पर घाटा पहुँचाने वाले खेतों को मिलाकर चकबन्दी के जरिए कैसे इस पेशे को स्वावलंबी बनाया जा सकता है। सामाजिक पहलू यह कि जाति और धर्म की असहिष्णुता से पड़ोसियों को बिलगाकर और सहयोग का रास्ता रोककर मानवता को दलदल में फँसाने के घातक षड्यन्त्र को कैसे रोका जा सकता है। लेखक का मत है कि दूसरी समस्या का हल सहकारी उत्पादन-व्यवस्था और अंतर्जातीय विवाह है। वर्ग-चेतना को उजागर करके सांप्रदायिक विरोध को उखाड़ फेंकने की यह पहल किसानों को करनी चाहिए और वे कर रहे हैं। धर्मों का विनाश लेखक के लिए इष्ट नहीं। इससे आसान कार्य उसकी राय में यह है कि धर्म को वैयक्तिक मामला समझकर सामाजिक क्षेत्र से उसे मुक्त रखा जाय।

इतने दिनों के अनुभवों के आधार पर साम्यवादी संसार ने भी कुछ इस किस्म की नीति को अपना लिया है कि जब तक समाज की प्रगति में बाधक न हो, धर्म को बर्दाश्त किया जाय। अंतर्जातीय विवाह और उससे होने वाला रक्त का मेल ही हमारी सांप्रदायिक चेतना का प्रतिविधान है। ज़मींदारी-प्रथा के अंत के लिए और खेती नामक सामाजिक कार्य को प्रतियोगिता से बिलगाकर सहकारिता में प्रतिष्ठित करने के लिए लेखक जो रास्ता बताता है, वह गांधी जी का मानसिक परिवर्तन ही है। भूस्वामी अपना स्वामित्व छोड़ दे, बुद्धिमान किसान स्वेच्छा से सहकारी खेती अपना ले तो उससे प्रभावित होकर दूसरे वर्गों के लोग भी संघर्ष की गलियाँ छोड़कर सहयोग के राजपथ पर आ ही जायँगे। क्या यह सम्भव होगा? भूस्वामी वर्ग—भले ही उसमें कुछ अपवाद भी हो, एक वर्ग के तौर पर सदाचार-बोध के फलस्वरूप, बिना मुआवजा लिये अपने शोषण का अधिकार स्वेच्छा से छोड़ देगा? कानून की मजबूरी के बिना कृषक स्वयं सहकारिता की ओर कदम बढ़ायँगे? निस्सन्देह हमारा अनुभव उत्तर देगा कि नहीं। उन राष्ट्रों में, जहाँ ज़मींदारों ने अपना शोषण का अधिकार छोड़ दिया, वे ऐसा करने को तब मजबूर हुए थे जब उनकी धरती खून से भीग गई थी। इसे टालने का एक ही उपाय है कि भारत की तरह बड़े ज़मींदारों को भारी मुआ-वजा देकर पूँजीपतियों का वर्ग पैदा करें। परस्पर प्रतियोगिता की नींव पर टिकी पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था जब तक अडिग होकर स्वच्छन्द राज्य करती रहेगी, सरकार के लिए किया जाने वाला हर असंघठित श्रम व्यर्थ ही रहेगा। मात्र पूँजीवाद के खंडहर पर समाजवादी सहकारी उत्पादन-प्रणाली प्रस्तुत की जा

सकती है। इस हालत में मेरे लिए यह सम्भव है कि प्रस्तुत नाटककार के आर्थिक आदर्श से सहमत हो जाऊँ। मगर इससे नाटक का मूल्य घटता नहीं। सत्य को जैसे संभाव्य बनाकर प्रदर्शित किया जाता है, वैसे ही संभाव्य को सत्य बनाकर प्रदर्शित करना उत्कृष्ट साहित्य का लक्षण है। अच्छा होता यदि पूँजीवाद स्वयं अपने को बरखास्त करे, आर्थिक प्रतियोगिता से आर्थिक सहकारिता में परिवर्तन मज़बूरी या रक्त-पात के बिना ही संभव हो। इडस्सेरी-जैसे आशावादी लोगों को इसकी चेष्टा करने दें। भले ही कोई भौतिक उपलब्धि न हो, इतना फ़ायदा तो होगा कि उनकी इस चेष्टा से संघर्ष से धूमिल इस दमघोटू वातावरण में थोड़ी-सी ताजी हवा के बहने में सहायता मिले। शायद 'कहाँ पहुँचे' सवाल की तरह 'कैसे पहुँचे' सवाल का भी मुख्य स्थान है। इसलिए ईमानदारी के साथ अहिंसा के सिद्धान्त पर विश्वास करते हुए किया जाने वाला कोई भी कार्य स्वागतार्ह होगा।

मैटरलिंक के इन वाक्यों की उद्धृति के साथ अब इस भूमिका को समाप्त करता हूँ—"यह महत्त्व की बात नहीं कि कोई नाटक निष्क्रिय है या सक्रिय, प्रतीकात्मक है या यथार्थवादी। बल्कि उसका महत्त्व इसमें है कि क्या वह सुचिन्तित है, सुलिखित है, मानव-सहज है—हो सके तो अतिमानवीय भी—उस शब्द के संपूर्ण अर्थ में। बाकी सब बातें निरा बातूनीपन हैं।" मैं अभिमान करता हूँ कि ऐसे ही एक नाटक का मैं प्रस्तोता बन सका।

२०-१२-४६ —एन० वी० कृष्ण वारियर

सहकारी खेती

पात्र

अबूबेकर	एक बूढ़ा गँवार मुसलमान
बापु, आइशा	उसकी संतानें
वेलु	एक गँवार किसान
लक्ष्मी अम्मा	मध्यवर्ग के नायर-परिवार की स्त्री
श्रीधरन् नायर, सुकुमारन्, पार्वती	लक्ष्मी अम्मा की संतानें
पोकर	अभी हाल में पूँजीपति बनने वाला मुसलमान मुकद्दमेबाज़
परङ्ङोटन नायर	ग्रामीण
वारियर, नंपियार	दस्तावेज़ लिखने वाला
चक्की, नीली, पातुम्मा, कुरुम्पा, अमीन	खेत मज़दूरिनें

[समय—बोने से फसल कटने तक

पहला अंक

पहला दृश्य

[श्रीधरन् नायर के घर का बरामदा। प्रभात-काल। पर्दा उठता है तो वेलु—५० साल का एक गँवई किसान—आँगन में घूमता हुआ दिखाई देता है। बरामदे में और कोई नहीं है। वेलु अपना आगमन जताने के लिए कभी यों ही खाँसता है, कभी खखारता है। बीच-बीच में पूछता है—"क्या कम्मल (मालिक) घर पर है?" अधीर होकर बड़बड़ाता है—]

वेलु : हर बड़े घर का ऐसा ही ढंग होता है। बाहर कोई दिखाई नहीं देगा। (**एक ओर उकड़ूँ बैठकर**) पता नहीं, घर से निकलते वक्त किस अभागे का मुँह देखा था। (**उठकर ऊँची आवाज़ में**) क्या कम्मल घर पर नहीं है ?

(**वृद्धा गृहिणी का प्रवेश। आयु पचास वर्ष। पुराने ढंग का पहनावा, भव्य चेहरा।**)

लक्ष्मी अम्मा : कौन है, वेलू[1] ? (**अन्दर से एक चटाई लाकर बरामदे के सिरे पर डालते हुए**) बैठो न इस पर। आजकल तो घर में 'तीयर' (अवर्ण) का प्रवेश भी मना नहीं है। और, इधर तुम लोगों को घर

---

१. यहाँ 'वेलू' में दीर्घ उकार का प्रयोग इसलिए किया गया है कि मलयालम में प्रायः पुकारते समय मात्राओं को दीर्घ कर देने का नियम है।

के बाहर खड़ा करना तो श्रीधरन् को ज़रा भी अच्छा नहीं लगेगा। अरे, तुम बैठते क्यों नहीं ?

वेलु : हाँ, श्रीधरन् कम्मल तो कुछ ऐसे ही हैं। (**बैठता नहीं, कुछ असमंजस में पड़ा-सा सिर खुजलाता हुआ खड़ा ही रहता है**) तो फिर आप यह सब कैसे सहन करती होंगी ?

लक्ष्मी : जैसा देश वैसा भेष, और क्या ? भैया के साथ के रीति-रिवाज़, धरम-करम सब सदा के लिए उठ गए। वर्तमान 'कारणवर' (गृहनाथ) की अगर यही इच्छा हो तो चलने दो। (**कुर्सी पर बैठकर**) वेलू, तुम बैठते क्यों नहीं ?

वेलु : (**खड़े रहकर**) उणिचुंटन कम्मल को अब मरे शायद एक साल…

लक्ष्मी : एक साल कहाँ ? मिथुन (जुलाई) महीने में ही तो एक साल पूरा होगा। हाय भगवन् ! इतने में क्या से क्या हो गया। 'तालपोलि'[२] बंद कर दिया गया। भुवनेश्वरी की पूजा भी नहीं चलती। कहता है कि इन सबकी क्या ज़रूरत है ? हे प्रभु ! तेरा ही भरोसा है !

वेलु : बात ठीक भी है मालकिन। जो दूसरों को धोखा देना चाहता हो, पूजा-पाठ की उसीको ज़रूरत है। हमारे श्रीधरन् कम्मल को तो अपने काम से काम है। उन्हें इन पूजा-पाठों, तिथि-त्योहारों से क्या मतलब ?

लक्ष्मी : ऐसा न कहो वेलू ! देवी-देवताओं की निन्दा न करो। उन्हींकी कृपा से हमारे परिवार पर कोई आँच नहीं आई।

वेलु : मालकिन ! अब तक कोई आँच नहीं आई तो इसका कारण है कि पुरखे काफ़ी कमा गए हैं।

२, दुर्गा के मंदिर का एक त्योहार। इसमें देवी का जो जुलूस निकलता है, उसमें स्त्रियाँ थाली लेकर सामने चलती हैं।

[इसे सुनकर श्रीधरन् नायर प्रवेश करता है। २५ वर्ष की आयु]

श्रीधरन् : (**अपनी माँ के पास जाकर वेलु को सम्बोधित करते हुए**) और अब पुरखों के साथ वह भी चला गया। अब उसीको जीने का हक़ होगा जो मेहनत करेगा। दूसरा कोई विकल्प नहीं।

वेलु : (**चटाई पर बैठकर**) ठीक है मालिक ! मेहनत ही जीने का सही रास्ता है।

लक्ष्मी : किन्तु, हमारे यहाँ कौन है जो मेहनत करे ? (**श्रीधरन् से**) उस सुकुमारन् को देखो, निठल्ला घूम रहा है। तुमको ही गृहस्थी के छोटे-मोटे काम देखने पड़ते हैं। अच्छा होता कि उसे किसी नौकरी पर लगा देते।

वेलु : ठीक है मालिक ! क्या आप सुकुमारन् कम्मल को कोई नौकरी नहीं दिला सकते ?

श्रीधरन् : बड़े लोगों की खुशामद और सिफ़ारिश के बिना आजकल काम मिलना मुश्किल है, वेलू !

लक्ष्मी : तब तो चल चुकी गृहस्थी। आय का कोई मार्ग न हो तो खायगा किसके घर भला ? इधर हमारे आसामी लोग हैं कि लगान के नाम पर अन्न का दाना तक नहीं देते।

श्रीधरन् : हमें स्वयं खेती करनी होगी, माँ !

वेलु : ठीक है मालिक। एक तरह से यही ठीक है। नौकरी की कमाई नौकरी पर ही खर्च हो जायगी। मगर खेती की जो कमाई है, वह सीधी घर पर ही आयगी।

लक्ष्मी : किन्तु हमारे खेत पट्टे पर काश्तकारों को दिये गए हैं। और उस अबूबेकर के साथ व्यर्थ ही जो मुकद्दमा चल रहा है, सो अलग। बरबादी का यह गड्ढा खोदकर 'कारणवर' ने सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

वेलु : मालकिन, हम अबूबेकर माप्पिळा[१] को किसी-न-किसी तरह ठीक रास्ते पर ला सकते थे। बुरा हुआ कि मामला अदालत तक पहुँच गया।

श्रीधरन् : (**विचारपूर्वक**) अच्छा, समझ लो कि खेत मिल ही गया। तो भी क्या भरोसा कि सुकुमारन् उस पर काम करने के लिए राजी हो जाय। कहीं ऐसा न हो कि इधर बुवाई-निराई का वक्त बीत चले और वह बैठा-बैठा कविता करता रहे।

(सुकुमारन् का बगल के कमरे से प्रवेश। २० वर्ष की आयु, शरीर पर साधारण वस्त्र, हाथ में पुस्तक।)

सुकुमारन् : मेरे कविता करने से खेती में बाधा नहीं पड़ेगी। मैं काम करने के लिए तैयार हूँ। दफ़्तरी गुलामी से छुटकारा चाहता हूँ।

लक्ष्मी : क्या तुम्हें भी सरकारी नौकरी बुरी लगती है ?

वेलु : और लगेगी भी क्यों न बुरी ? जब इच्छानुसार घूमने-फिरने का समय हो तब दूसरों की लल्लो-चप्पो करना किसे अच्छा लगेगा ?

सुकुमारन् : (**श्रीधरन् की ओर देखकर**) और कविता करना बंद कर दूँ, तो भी बीज आकाश पर थोड़े बोये जाते—।

(सब हँस पड़ते हैं। सुकुमारन् माँ के पीछे एक कुर्सी को पकड़कर खड़ा हो जाता है।)

श्रीधरन् : बीज बोये जायँगे हमारी मौरूसी ज़मीन पर ही।

सुकुमारन् : यदि यह बात है तो हो गई खेती ! काश्तकारों को पट्टे पर ज़मीन देकर ज़मींदार बीज बोने जाय, तो बुवाई होगी मेंड पर !

(सब हँस पड़ते हैं।)

वेलु : कुछ भी हो, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अब काश्त-

१. केरल में मुसलमान को 'माप्पिला' कहते हैं। यहाँ इस शब्द का प्रयोग 'जनाब' के अर्थ में हुआ है।

कारों की जान बच गई।

सुकुमारन् : जी हाँ, बचनी भी चाहिए। मगर इस बचाव का उपाय किया किसने? इसका श्रेय न किसानों को, और न ज़मींदारों को, अपितु भूमि-सुधार के लिए लड़ने वाले मध्यवित्तों को मिलना चाहिए। उनमें मेरे भैया भी शामिल हैं। और अब···

श्रीधरन् : और अब?

सुकुमारन् : और अब वे ही मध्यवित्त बरबाद होते जा रहे हैं। नई व्यवस्था से ज़मींदारों का बाल तक बाँका न हुआ, और इधर काश्तकार भी अपनी किस्मत की सराहना कर रहे हैं।

वेलु : किन्तु, किसानों की दशा अभी नहीं सुधरी है। उन्हें अब भी लगान देना पड़ता है।

लक्ष्मी : और सुना है कि अब किसानों की माँग यह है कि जो बोए, वह काटे। अर्थात् लगान-वसूली एकदम बंद हो।

श्रीधरन् : हाँ, इसके लिए आन्दोलन शुरू होने वाला है। और इसके अगुआ रहेंगे काश्तकार (**सुकुमारन् को देखकर**), न कि तुम्हारे मध्यवित्त।

सुकुमारन् : लेकिन अब तक जो किसानों की पैरवी कर रहे थे। वे इसका विरोध नहीं कर सकेंगे।

श्रीधरन् : करेंगे भी क्यों? हम किसानों के साथ रहेंगे।

सुकुमारन् : तो क्या इसके लिए हमें उनकी तरह श्रम नहीं करना होगा? और श्रम करना हो तो क्या पहले खेत नहीं चाहिएँ?

श्रीधरन् : हम उनसे मिल जायँगे। परिवर्तन वहीं से शुरू होगा।

सुकुमारन् : (**विचार करके**) यह आपकी मिथ्या धारणा है। यदि वे सब हिन्दू होते और हमारा तथा उनका सोचने का एक ही ढंग होता तो हम उनके साथ मिलकर कार्य कर सकते थे। इसके लिए दूर क्यों

जायँ ? हमारी ही बात लीजिए। हमारे सभी पट्टेदार मुसलमान हैं, और···

वेलु : इसमें क्या है, छोटे मालिक ? हमारी कुदाल हमारे पास रहेगी और 'माप्पिळा' (मुसलमान) लोगों की उनके पास।

सुकुमारन् : बात यह नहीं है, वेलु ! कुदाल हमारे हाथ में और खेत उनके पास रह गया है। अब स्थिति बदल गई है। हम दोनों में अब मेल संभव नहीं है, और आगे कभी होने की आशा भी नहीं।

श्रीधरन् : क्या ? तुम आर० एस० एस० के सदस्य तो नहीं हो ?

(पार्वती का प्रवेश। आयु १५ वर्ष। साधारण पोशाक, हाथ में चायदान और दो गिलास।)

पार्वती : आर० एस० एस० न हो तो और क्या हो ? जब देखो लोगों से उलझ पड़ना और मार-मुक्कों की धमकी देना···।

(सबका हँस पड़ना। सुकुमारन् पार्वती की ओर घूरकर देखता है। पार्वती श्रीधरन् और वेलु को चाय देती है।)

सुकुमारन् : सच कहने वालों पर आजकल यही तीर चलाया जा रहा है। यह देखने वाला कोई नहीं कि जो कुछ आर० एस० एस० में है, वह कहाँ तक ठीक है।

श्रीधरन् : तुम्हारी बात ठीक नहीं है। अगर सभी काश्तकार माप्पिळा हैं तो इसका यही अर्थ है कि हम अब तक हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे और वे लोग कड़ी मेहनत करके हमारे लिए अन्न पैदा करते रहे।

(वेलु चाय पीता है। पार्वती उसे फिर चाय देती है।)

लक्ष्मी : सो तो ठीक है। अब तक हमारे परिवार में किसी ने कोई काम नहीं किया है। अबूबेकर के लगान अदा करने से ही हमारा निर्वाह हो रहा था।

सुकुमारन् : वह खैरात तो नहीं दे रहा था।

श्रीधरन् : खैरात नहीं तो और क्या ? इसे तो ज़बरदस्ती लिया हुआ दान कहना चाहिए।

वेलु : कम्मल ! अबूबेकर माप्पिळा भले ही हो, वह है बड़ा भलामानस। मैं अभी उसके यहाँ से आ रहा हूँ। अबूबेकर और आपके बीच अदालत में बहुत-से झगड़े चल रहे हैं। किन्तु, इससे क्या हुआ ? वह इतना बेईमान नहीं कि अतीत को एकदम भूल बैठे।

लक्ष्मी : क्यों, क्या हुआ ? कुछ कहला तो नहीं भेजा तुमसे ? अदालत में जो अभियोग चल रहा है, उसे वापस लेने के बारे में—

वेलु : सो तो साफ़-साफ़ उसने कुछ नहीं कहा, किन्तु बातचीत से ऐसा लगा कि समझौते की गुंजाइश है।

श्रीधरन् : अरे रे ! मैं बिलकुल भूल ही गया था न ! पहले ही पूछ लेना चाहिए था। आखिर तुम्हारा आना क्यों हुआ ?

वेलु : मेरे खेत से पानी की निकासी का कोई रास्ता नहीं। ज़मीन गोड़-कूटकर दो-एक बीज बो भी दूँ तो भी 'तिरुवातिरा आट्टुवेला'[1] में सब सड़ जाते हैं। पिछले साल सारी फ़सल बरबाद हो गई थी। पानी की निकासी का कोई इंतज़ाम नहीं है।

श्रीधरन् : क्या अबूबेकर मानता नहीं है ? पानी निकालने के लिए उसीके खेत से तो मार्ग बनाना होगा।

वेलु : यह बात नहीं कि वह नहीं मानता। पानी की निकासी के लिए अबूबेकर के खेत के किनारे से नाला खोदना पड़ेगा। और कोई चारा नहीं। इसी विषय में बातचीत करने के लिए मैं अभी उससे मिला था।

श्रीधरन् : क्या कहा उसने ? मान लिया ?

वेलु : उसने कहा कि इसके लिए आपको राज़ी करना पड़ेगा। और कहा

---

१. जून-जुलाई में केरल में होने वाली वर्षा। कहते हैं कि इसी वर्षा के कारण केरल सदा-बहार रहता है।

कि क्योंकि हम दोनों में मुकदमा चल रहा है, इसलिए तुम्हीं जाकर मालिक को मना लो !

श्रीधरन् : (**सुकुमारन् को देखकर**) प्रश्न हिन्दू-मुसलमान का नहीं, ज़मींदार-काश्तकार का है। किसान और किसान के बीच कोई झगड़ा है ही नहीं। वे तो एक हैं। उनका प्रतिद्वन्द्वी हमेशा ज़मींदार ही रहा है।

पार्वती : भैया, चाय पिओ न ? ठंडी होती जा रही है।

श्रीधरन् : अच्छा, पी लूँगा। और सुकुमारन्, तुम नहीं पिओगे ?

पार्वती : वह तो दो बार पी चुके।

सुकुमारन् : (**उठकर अन्दर जाते-जाते**) जी हाँ, पी चुका हूँ। अब भर-पेट खाये-पिये बिना काम न चलेगा। अब खेत में काम करने जा रहा हूँ न ? (**हाथ की पुस्तक को पार्वती के सिर पर मारता है। पार्वती प्रतिवाद करती है तो चुप रहने का संकेत करता है। लक्ष्मी अम्मा यह देख लेती है।**)

लक्ष्मी : इसीलिए तो मैं कहा करती हूँ कि तुम बेकार घर पर पड़े रहोगे तो यहाँ किसी को शान्ति नहीं मिलेगी।

श्रीधरन् : (**वेलु से**) अच्छा, चलो, मैं भी चलता हूँ अबूबेकर के पास। उससे कुछ और बातों के बारे में भी बातचीत करनी है। (**सुकुमारन् से**) यदि अबूबेकर के साथ मेरा समझौता हो जाय तो तुम हमारे साथ काम करने के लिए तैयार हो या नहीं, यही मैं जानना चाहता हूँ।

सुकुमारन् : अगर माप्पिळा क़ायदे से पेश आए तो ठीक है। वरना मैं किसी के पैर पकड़ने थोड़े ही जाऊँगा।

श्रीधरन् : (**माँ से**) तुम्हारा बेटा अब भी अपनी पुरानी ज़मींदारी की शान छोड़ने के लिए तैयार नहीं।

(**सब हँसते हैं।**)

[**यवनिका-पतन**]

दूसरा दृश्य

[अबूबेकर के घर का बरामदा। समय दोपहर से पहले। कुछ खेती के औज़ार बाहर पड़े हैं—डोल, हल, फावड़ा। एक खाट, दो कुर्सियाँ, एक बैंच। अबूबेकर खाट पर बैठा है। साठ वर्ष की आयु। देहाती 'माप्पिळा' किसान की तरह कमर पर लुंगी, डोरी से बँधी। खाट के नीचे थूकदान। पान खाने की तैयारी में है कि श्रीधरन् नायर और वेलु प्रवेश करते हैं।]

अबूबेकर : आओ वेलू ! आइए श्रीधरन् नायर ! बैठिए।

(श्रीधरन् नायर कुर्सी पर बैठता है। वेलु टहलता हुआ सुपारी के बगीचों की ओर देखता है।)

वेलु : यह क्या ? आज सिंचाई नहीं होगी ? सुपारी के पेड़ों से फूल झड़ने लगे हैं न ? 'इटमषा'[1] के होते ही पानी देना शुरू न कर दिया गया तो ये पेड़ बचेंगे कैसे ?

अबूबेकर : वेलू, अल्लाह का दिया बचेगा ही।

श्रीधरन् : फूलों की तेज़ खुशबू फैल रही है।

अबूबेकर : सुनिए श्रीधरन् नायर ! आपके घर के मुखिया ने ही हमें यों बरबस घुटने टेकने पर मजबूर किया था।

श्रीधरन् : इसीके बारे में बातचीत करने के लिए मैं अब आया हूँ।

(वेलु की ओर देखता है।)

वेलु : जी हाँ, आप ज़मींदार हैं और यह आपका काश्तकार। आपस में मिलने और बातें करने में क्या हर्ज़ है ?

अबूबेकर : मैं अब कुछ भी सुनना नहीं चाहता। काफ़ी परेशान हूँ। एक लड़का जो था…

---

१. बरसात का मौसम शुरू होने के पहले रह-रहकर होने वाली झड़ी।

श्रीधरन् : कौन, बापू ? उसे क्या हुआ ?

अबूबेकर : कहीं भाग गया।

वेलु : बहुत बुरा हुआ। बात क्या है आख़िर ?

अबूबेकर : पूछते हो, बात क्या है ? इन ही से पूछो न। (**नायर की ओर इशारा करता है।**)

श्रीधरन् : (**हैरानी के साथ**) मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा !

अबूबेकर : आप लोगों को जानना ही पड़ेगा। आपके ढोर हैं न हम—बेगार ढोने वाले ढोर ? देखिए न, 'विषु'[1] आया और चला गया, और पानी भी बरसा। मगर खेत का यह हाल है कि अभी ढेले भी नहीं तोड़े गए। खेत पड़ा-पड़ा 'साँय-साँय' कर रहा है।

वेलु : मगर माप्पिळे, इसमें श्रीधरन् कम्मल का क्या कसूर ?

अबूबेकर : किसान होकर तुम भी यह पूछ रहे हो वेलू ! फसल ख़राब हो जाय, इनके घर के मुखिया बेदखली की दरख्वास्त करें, घर की चीज़ें भी ज़ब्त करवा ली जायँ और जो कुछ बचा हो, उसे बेच-बाचकर हम मुक़द्दमा लड़ें। और आख़िर इतनी सारी दौड़-धूप के बाद मिलता क्या है ? फ़ाका, बेइज़्ज़ती··· (**क्षोभ के कारण गला रुँध जाता है।**)

श्रीधरन् : मेरे मामा ने दरअसल जो यह सब किया, बहुत बुरा किया। इस सबके बारे में बातचीत करने के लिए ही अब हम आए हैं।

अबूबेकर : अब कुछ भी न कहिए। एक तो मैं अकेला रह गया हूँ, दूसरे अब बूढ़ा हो गया हूँ। जुताई-सिंचाई का काम अब मुझसे नहीं होगा। आपके मामा ने बड़ा जुल्म ढाया था मुझ पर। सब-कुछ हो जाने के बाद अब यह कहना आसान है कि अब हम समझौता करेंगे। (**उठकर टहलने लगता है।**)

---

१. नववत्सर, जो मेष महीने में शुरू होता है।

वेलु : (साथ चलते हुए) इस तरह ज़िद मत करो माप्पिळे !

अबूबेकर : क्या तुम भी यही कह रहे हो ! अब मुझे किस बात की कमी रह गई ? यह हुआ एक मुक़द्दमा। पोकर की ओर से भी एक मुक़द्दमा है घर खाली करने के लिए ! बेटे के चले जाने के बाद उसकी माँ खाट से उठी नहीं। इधर बाड़े में पड़े हैं दो प्राणी, जिनको दाना-पानी देने वाला तक कोई नहीं। क्यों ?

वेलु : तुम्हारे इन सब दुःखों का कारण बेटे का चला जाना है। और असल में है भी दुखी होने की बात।

अबूबेकर : बस, यही कहो वेलू ! (शान्त होकर खाट पर बैठता है। अन्दर की तरफ़ देखकर पुकारता है।) आइशा ! (वेलु से) तुम बैठो न वेलू ! (बैंच की ओर इशारा करता है।)

वेलु : ख़ैर कोई बात नहीं, मैं यहीं बैठूँगा। तुम वह बैंच ज़रा दे देना ! (अबूबेकर बैंच देता है। वेलु उस पर बैठता है। आइशा आकर अबूबेकर के पास खड़ी हो जाती है। काले रंग की 'काचिच'[1], कुर्ता और 'तट्टम'[2] आयु १५ वर्ष।)

अबूबेकर : यह पानदान उनके सामने रख दो !

(आइशा पानदान श्रीधरन् नायर के सामने रखती है।)

श्रीधरन् : (स्मितपूर्वक) मैं पान नहीं खाता। वेलु के पास रख दो !

आइशा : तो 'कळि'[3] खाइए। काका (भाई) पान नहीं खाते थे। कळि अलबत्ता खाते थे।

श्रीधरन् : बहुत अच्छा। (कळि लेता है। फिर आइशा पानदान वेलु के सामने रख देती है।)

---

१. धोती।

२. सिर पर ओढ़ने का कपड़ा।

३. 'कलि' उस सुपारी को कहते हैं जिसे कुछ मसालों के साथ सुखाया जाता है।

आइशा : वेलू ! कजरी ने बच्चा दे दिया है क्या ?

वेलु : **(साह्लाद)** हाँ, दे दिया है। बछड़ा है।

आइशा : **(बाप के पास जाकर)** काका कहा करते थे कि बछड़ा हो तो हमें खरीदना चाहिए।

अबूबेकर : **(सार्द्र)** बेटी, तुम जब देखो काका का नाम जपती रहती हो ?

वेलु : अशौच के बाद यहीं लाकर बाँध दूँगा। चिन्ता न करो बेटी !

अबूबेकर : अब नहीं वेलू, अब हम इस हैसियत में नहीं कि···

वेलु : कोई बात नहीं। मैं भी बाल-बच्चों वाला हूँ।

श्रीधरन् : तो अब हमारे मुक़द्दमे के बारे में क्या कहते हो अबूबेकर माप्पिळे ? आज फ़ैसला करने के विचार से ही मैं आया हूँ। मगर इधर तुम हो कि कुछ कहने पर गुस्सा करने लगते हो।

अबूबेकर : भला मैं गुस्सा क्यों करूँ ? कभी नहीं करूँगा गुस्सा। गुस्सा और खुशी आप लोगों के लिए है, जो ज़मींदार हैं। क्यों वेलू ?

वेलु : हमारे गुस्से का भी क्या अर्थ है ? उसकी कीमत ही क्या ?

अबूबेकर : आपके मुखियों ने आँखें दिखाई और कहा—खेत खाली करो, वरना···। अब आप हँस दिए, कहने लगे—खेत खाली करो ! सब एक ही थैली के···**(सब हँसते हैं।)**

श्रीधरन् : **(उठते हुए)** ऐसा न समझो। सब एक ही थैली के नहीं भी हो सकते हैं। मेरे मामा उस पुरानी परंपरा के थे, जो बेदखली को अन्याय नहीं समझते थे।

वेलु : यह भी सच है।

श्रीधरन् : आज ज़माना बदल गया है। मेरा जन्म ज़मींदार के खानदान में हुआ तो इसमें मेरा क्या क़सूर ? आज मैं भी संकट में हूँ, जैसे तुम हो। तुम मेहनत करते हो, किन्तु उसका उचित मूल्य नहीं मिलता।

मैं मेहनत करने के लिए तैयार हूँ, काम नहीं मिलता।

अबूबेकर : ठीक ही कह रहे हो।

श्रीधरन् : जब हालत यह है, तो मैं ज़रा इसकी आज़माइश ही क्यों न करूँ कि इस काल की गति से ताल मिलाकर कुछ कर सकूँगा या नहीं। अब मैं तुम्हारे सामने ज़मींदार की अकड़ दिखाने नहीं आया हूँ।

अबूबेकर : मगर खेत तो मैं खाली नहीं कर सकूँगा। बाक़ी जो कहेंगे मान लूँगा।

श्रीधरन् : अगर कहूँ कि खेत खाली न करो, तो ?

अबूबेकर : और अदालती खर्चा भी नहीं चुकाऊँगा। बेकार घाटा उठाने के लिए मुझे मजबूर किया गया था।

श्रीधरन् : जाने दो, वह भी नहीं माँगता।

अबूबेकर : (**विस्मय के साथ**) यह क्या ? आप मेरी हँसी तो नहीं उड़ा रहे हैं ? एक बात साफ़-साफ़ बताये देता हूँ। इस माप्पिळा से खिलवाड़ करना बहुत बुरा होगा। हाँ !

वेलु : अरे मियाँ ! पूरी बात सुनो तो सही। क्या तुमने यही समझ रखा है कि हमें इसके अलावा और कोई काम नहीं कि यहाँ आकर तुमसे खिलवाड़ किया करें !

अबूबेकर : तो फिर ? अब तक जिस तरह चले आ रहे थे, क्या उसी तरह चलने का इरादा है ? तब तो बहुत अच्छी बात है। मुझे कोई एतराज़ नहीं।

श्रीधरन् : मगर एक बात। लगान वसूल करके जीवन-निर्वाह करना अच्छा नहीं। उससे निर्वाह हो भी नहीं सकता।

अबूबेकर : इसका मतलब तो हुआ खेत खाली करना।

श्रीधरन् : बिलकुल नहीं।

अबूबेकर : तो फिर साफ़-साफ़ कहिए न, आपको क्या चाहिए ?

श्रीधरन् : मैं बताये देता हूँ... (**इतने में नंपियार**[1] **आता है। आकर द्वार पर खड़ा रहता है। पचास वर्ष की आयु। फाइल और छाता लिये हुए। उस पर किसी की दृष्टि नहीं पड़ती।**)

श्रीधरन् : हमारे खेत दो टुकड़ों में हैं, जिनके बीच में एक छोटा-सा टुकड़ा वेलु का है। सब टुकड़ों को एक बना लें। तुम्हारे लड़के भी खेत में काम करते हैं। वेलु के भी। तुम्हारे साथ हम भी मिल जायँ तो कैसा रहे ?

वेलु : हाँ, कैसा रहे ?

श्रीधरन् : खेत एक; और काम करेंगे उसमें सब मिलकर एक साथ। वेलु के खेत के हिसाब के अनुसार पैदावार का एक हिस्सा उसे दिया जायगा। बाकी का आधा-आधा हम बाँट लेंगे। क्यों, क्या कहते हो ?

अबूबेकर : तो...

नंपियार : (**सामने आकर**) जी हाँ, ईंट से अगर काम न बने तो पत्थर से, और क्या ? अदालत से काम न बनता देखकर अब चिकनी-चुपड़ी बातों से फँसा लेने का इरादा है। क्यों श्रीधरन् नायर ?

अबूबेकर : लो, नंपियार भी आ गए। यह अच्छा ही हुआ। अब अदालत में मुकदमा दायर करने वाला ही वापस लेने का इन्तज़ाम भी करेगा। बैठिए नंपियार।

(**नंपियार बैठता है।**)

श्रीधरन् : यह तो मेरे कथन की उल्टी व्याख्या हुई। बस, इस मामले में इतना ही देखना है कि अबूबेकर को इसमें लाभ है कि नहीं।

नंपियार : अब आपको अचानक अबूबेकर के नफ़े-नुक्सान की फ़िक्र क्यों

---

१. मलयालम में इस शब्द का उच्चारण 'नंप्यार' तथा 'नंब्यार' के रूप में भी होता है।

होने लगी। आपके पूर्वजों ने जो कुछ दे रखा है, बस उसीसे वह आराम से ज़िन्दगी गुज़ार सकता है।

श्रीधरन् : (**सोचकर**) आप तो किसी तरह की सुलह के लिए तैयार नहीं—ऐसा लगता है। हों भी कैसे? हम दोनों को भिड़ाना ही तो आपका पेशा ठहरा।

नंपियार : (**क्षुब्ध होकर**) बढ़-बढ़कर बातें न करो जी!

अबूबेकर : छिः! छिः! नंपियार, यह क्या? वह अपनी कह रहे हैं और हम अपनी। साझे की खेती अगर हो सकती है, तो उसमें लाभ ही है। खेती के बारे में कुछ-कुछ मैं भी समझता हूँ। वेलु भी हमारे साथ मिल गया तो उसके खेत में सिंचाई भी हो सकती है। तीन-तीन फ़सलें काटा करेंगे।

वेलु : हाँ-हाँ, क्यों नहीं? नेकी और पूछ-पूछ? मैं भी अवश्य तुम लोगों के साथ रहूँगा। मैं भी खेती-बारी के बारे में डेढ़ अच्छर जानता हूँ।

अबूबेकर : और इस तरह सहकारी खेती हो भी सकती है या नहीं? यही अब सोचना है।

नंपियार : कौन जाने। अब तो कानून सब बदल गया है। ज़मींदार और काश्तकार दोनों मिलकर खेती करें तो हिस्सा आधा-आधा, यही दस्तूर है। फ़सल एक बार काट ली गई तो फिर खेत में ज़मींदार की अनुमति के बिना काश्तकार कदम भी नहीं रख पायगा। पूछ लेना वकील से।

वेलु : वकील ठहरा दूसरा शैतान।

(**आइशा यह सुनकर हँस पड़ती है।**)

अबूबेकर : अइशा भी इस मामले में तुम्हारे साथ है, वेलू। इसका कहना है कि अदालत शैतानों का ही पक्ष लेती है।

आइशा : अगर शैतान न हो तो दुनिया-भर की बातें गढ़-गढ़कर लोगों को आपस में कौन लड़ायगा?

अबूबेकर : (**आइशा की ओर देखकर**) बस-बस, अब तुम अन्दर चलो !

नंपियार : आप ही बेटी को बिगाड़ रहे हैं।

अबूबेकर : बात यह है कि उस दिन आपने बापू के बारे में मुझसे शिका-यत की थी तो मैंने उसे पकड़कर दो थप्पड़ लगा दिए थे। उसी दिन से वह आपसे नाराज़ है।

(**आइशा नंपियार को मुँह चिढ़ाकर चली जाती है। श्रीधरन् नायर और वेलु हँस पड़ते हैं।**)

नंपियार : अच्छा, तो कल पोक्कर के मुक़द्दमे की सुनवाई जो होने वाली है, वह भी वापस लेने का इरादा है क्या? इस ढंग से उसका भी फ़ैसला किया जा सकता है। घर के आधे हिस्से में आप रहिए और आधे पर पोक्कर को दखल करने दीजिए। क्यों, क्या यह ठीक है ?

वेलु : नहीं-नहीं। इस बारे में समझौता नहीं हो सकता।

श्रीधरन् : तो फिर क्या आप यही चाहते हैं कि लोग आपस में लड़ते जायँ ?

वेलु : उसकी अक्ल ठिकाने पर नहीं है जी। उस छोकरी ने जो कहा वही ठीक है।

अबूबेकर : अब क्या होगा नंपियार ? कल के मुक़द्दमे के लिए मेरे पास दमड़ी तक नहीं है।

नंपियार : घर की बेदखली का मामला है। खिलवाड़ न करना, कहे देता हूँ। हाँ !

(**अबूबेकर निराश भाव से अन्दर जाता है।**)

नंपियार : (**श्रीधरन् से**) बुरा हुआ ! आपके मामा की इच्छा थी कि खेत पर दखल कर लें। लाख हो, हम सब एक ही जाति के ठहरे। इसीलिए कह रहा हूँ।

वेलु : उस लड़की का कहना सोलहों आने सही है।

श्रीधरन् : क्या कहा था उसने ?

वेलु : कहा था, यह शैतान है।

नंपियार : अरे चुप ! तुम जाल क्यों बिछा रहे हो, मैं खूब जानता हूँ। ओझा के सामने अपनी जादू की पिटारी न खोला करो !

वेलु : तुम ओझा नहीं, ओझा के परदादा हो।

अबूबेकर : (**प्रवेश करके नंपियार से**) यह लो, बिटिया के गले से उतार लाया हूँ। गिरवी रखकर तीस रुपये ले लो ! आपके खर्च के लिए भी तो पैसा चाहिए ही। पैसा हाथ लगते ही गहना छुड़ा लेना होगा। (**गहना देता है।**)

नंपियार : (**विरसता के साथ**) गिरवी-विरवी तो मुझसे नहीं होगी। (**गहने के वज़न का अन्दाज़ा लगाकर**) मगर, क्या करूँ ? मामला आपका ठहरा। कैसे चुप रहूँ ? (**गहने को धोती के अंचल में रखकर**) तो इनके बारे में क्या तय हुआ ?

अबूबेकर : मैं मामले को इनके कहे अनुसार आपस में तय करना बेहतर समझता हूँ।

नंपियार : आपकी मर्जी। मगर पहले वकील से सलाह करते और··· न-न, अब मैं चुप रहूँगा। (**छाता उठाता है।**)

वेलु : तुम्हारे चुप रहने में ही भला है। शैतान—

नंपियार : (**गुस्से में आकर**) अबे ! तुम्हारी यह मज़ाल ? यह लो। (**छाते से मारने को दौड़ता है।**)

वेलु : (**उठकर**) भला चाहते हो तो अपना रास्ता नापो। हाँ, चोरी पर सीना ज़ोरी ?

(**श्रीधरन् नायर दोनों को अलग करते हैं। अबूबेकर घबरा जाता है। आइशा इशारे से बताती है कि खूब हुआ।**)

[यवनिका-पतन]

तीसरा दृश्य

[खेत। आइशा एक ओर खड़ी लट्ठे से ढेले फोड़ रही है। दूसरी ओर सूप में बीज लेकर सुकुमारन् बो रहा है। बीच-बीच में दोनों एक-दूसरे की ओर देखते हैं। आइशा अचानक लट्ठा डालकर आँख में बीज पड़ने का बहाना करती है और हाथों से आँखें ढँककर 'सी-सी' करती है। 'क्या हुआ' कहकर सुकुमारन् पास आता है।]

आइशा : दूसरों की आँखों में भी कहीं बीज बोये जाते हैं ?

सुकुमारन् : ओह ! तुम्हारी आँखों में पड़ गया क्या ? मैंने नहीं देखा। देखूँ ज़रा···

(सुकुमारन् आइशा का हाथ हटाकर आँखों में जोर से फूँक मारता है। आइशा आँखें पोंछकर मुस्कराती है।)

आइशा : बस, निकल गया बीज ! क्या यही बीज बोने का तरीका है। अगर बोना आता नहीं, तो चुप क्यों नहीं रहते ?

सुकुमारन् : तुम्हें चाहिए था कि जब मैं बोने आता तो खेत से निकल जातीं। जुताई के समय कोई गुड़ाई थोड़े ही करता है।

आइशा : मैं श्रीधरन् नायर से न कहूँ तो देख लेना। कहूँगी कि इधर कोई नाक-नैन मूँदकर बीज बोने आता है, जिससे दूसरों का काम करना दूभर हो गया।

सुकुमारन् : और ? और क्या-क्या कह दोगी भैया से ?

आइशा : और कह दूँगी कि इधर एक साहब ऐसा आ गया है जोकि बीज बोता है किसी की आँखों में !

(ढेले फोड़ने लगती है।)

सुकुमारन् : और फिर यह भी कहोगी कि नहीं कि उसके बाद उसी साहब

ने मेरी आँखें खोलकर फूंक मारी थी।

(**आइशा इस तरह लट्ठा ढेले पर मारने लगती है कि ढेले के टुकड़े उछलकर सुकुमारन् के बदन पर गिरने लगते हैं।**)

सुकुमारन् : और यह भी ज़रा भैया से कहना कि इधर किसी ने ढेला मार-मारकर किसी के पैर तोड़ डाले। कहोगी कि नहीं ?

आइशा : इधर कोई तुम्हारा हुक्म बजा लाने वाला हो तब न ?

सुकुमारन् : (**स्मितपूर्वक**) तो मैं ही कह दूंगा। तुम जो कुछ कहना चाहती हो सब मैं ही कहे देता हूँ।

आइशा : चलो, हटो ! जब देखो बक-बक करते दीखते हो और बाप की खरी-खोटी सुननी पड़ती है मुझे (**फिर ढेले फोड़ने लगती है और सुकुमारन् बोने लगता है।**)

आइशा : तुम्हारी बहन कहाँ है ? भैया, वेलु, और मेरे पिता अभी खेत से निकलने वाले हैं न। वह अभी क्यों नहीं आई ?

सुकुमारन् : आती ही होगी। तुम लोगों के साथ हम मर्द इस तरह कछुए की चाल नहीं चल सकते। समझीं ?

आइशा : तो तुम्हारे कहने का मतलब यही है न कि तुम भी एक मर्द हो। यह तो अच्छी दिल्लगी रही। कोई आकर देख ले, इस मरदूद का चेहरा तो ज़रा ! मुँह-अँधेरे खेत में उतरा था काम करने कि अभी खत्म नहीं हुआ।

सुकुमारन् : और तुम्हारा ढेले तोड़ना—वह भी शुरू हुआ था मुँह-अँधेरे ही। (**दोनों हँस पड़ते हैं। इतने में नेपथ्य से वेलु की बैलों को ललकारने की आवाज आने लगती है।**)

सुकुमारन् : ऐसा आदमी कभी न देखा था जिसे थकावट छू तक न गई हो।

आइशा : ठीक है। पिता और श्रीधरन् नायर बीच-बीच में कुछ सुस्ता

तो लेते हैं। मगर एक वेलु है कि छूटते ही बैलों को ललकारता हुआ खेत पर कूद पड़ा था कि दम लेना भी वह भूल गया।

सुकुमारन् : कौन 'पुल्ला' बैल को जोत रहा है ?

आइशा : बाप्पा (पिता)।

सुकुमारन् : तो भैया मेंड़ गोड़ रहे होंगे ?

आइशा : हाँ, तुम जाओ न, ज़रा उनकी मदद करो न ?

सुकुमारन् : मुझसे यह काम न होगा—कुदाल उठा लेना और झुककर मेंड़ गोड़ते जाना···

आइशा : (**नकल करती हुई**) मुझसे यह काम नहीं होगा, सिवाय इसके कि कलम-घिसाई करता जाऊँ और गाता जाऊँ। (**दोनों का हँसना।**)

सुकुमारन् : लो, वेलु सामने के खेत पर उतर गया। देखो-देखो आइशा उसके हल के फाल से मिट्टी किस तरह पीछे की ओर पलटा खाये जा रही है। इस सोंधी मिट्टी की महक ने जैसे 'मैलन' (**बैल का नाम**) में मस्ती भर दी है।

आइशा : उसका झूम-झूमकर चलना तो ज़रा देखो।

(**आइशा ढेले फोड़ती हुई गाने लगती है।**)

बीज और कुदाल
बीज और कुदाल !

पहली बारिश की ठंडी फुहारें
आ के पड़ी हैं खेतों में
जो जुताई की प्रतीक्षा में
चुप चाप पड़े हुए हैं।
बीज और कुदाल !

हल जुतने से सोंधी महक
बिखरती नाचने वाली मिट्टी में

जिसमें लहरें पड़ीं
नदी में हिलोलें मारती
तरंगों की नाईं
बीज और कुदाल !

(पीछे का पर्दा उठता है तो हल जोतने वाला वेलु दीख पड़ता है।

वेलु : प्यारे बैलो ! खेल-खेल में
हल जोतने जाना
गल-कंबल को हिलाते जाना
चलते जाना, जुतते जाना
बीज और कुदाल !

सुकुमारन् : कीर वृन्द चहचहाते उड़ते फिरते हैं
बीज और कुदाल !

सुकुमारन् और आइशा : दूर ऊपर तनी हुई
चमेली लता पुष्पित हुई
जिस पर बैठा गा रहा है
जादूगर तू कीर।
बीज और कुदाल !

सुकुमारन् : आइशा ! इसके बाद की कड़ियाँ तुम्हें नहीं आतीं ?

आइशा : नहीं तो। तुम्हें आती हैं ?

सुकुमारन् : हाँ, सुनो—
आओ आओ ! दिव्य गीत से
मुखरग गन में
घुल-मिल जाएँ
हम दोनों उस गान-माधुरी में
बीज और कुदाल !

आइशा : ये कड़ियाँ मैं नहीं गाऊँगी। इन्हें कोई नहीं गाता।

सुकुमारन् : मगर मैं तो गाया करता हूँ।

आइशा : तुम गढ़-गढ़कर गा रहे हो। आइशा को तुम धोखा नहीं दे सकते। समझे ?

(सिर पर एक बड़ा बरतन और हाथ में कुछ केले के तने के छिलके और पत्तल लेकर पार्वती का प्रवेश। आइशा बरतन उतारकर रखने में सहायता करती है।)

पार्वती : भैया, तुम इस तरह बीज की टोकरी सिर पर रखे काँवर वालों की तरह बेतहाशा भागे क्यों आए ? मैं भी साथ आती।

आइशा : इस पर मैं यकीन नहीं कर सकूँगी। न तुम्हारे भैया भागना जानते हैं और न ही टहलना। कल की बात है कि हम घर जा रहे थे तो बाप्पा रुककर पूछने लगे—तो क्या बच्चो, तुम खेत ही जा रहे हो ? सुनकर मैं मारे शर्म के ज़मीन में गड़ गई।

पार्वती : तो आज अचानक भैया को क्या हो गया था कि भागे-भागे खेत पर जा रहे थे।

सुकुमारन् : बस, आते ही शुरू हो गई दोनों की चख-चख। सिर पर बोझ रखे कोई थोड़े ही चलने लगेगा, गाते-नाचते और झूमते-झामते।

(श्रीधरन् नायर और अबूबेकर का प्रवेश।)

श्रीधरन् : यहाँ बैठे सब गप्पें मार रहे हो क्या ? एकाध ढेला तोड़ लेते ? **(बीज की ओर देखकर)** सुकुमारन् ! यह काफ़ी नहीं होगा। बाकी बीज भी घर से उठा ले आना होगा। काफ़ी जगह पर जोता गया है।

सुकुमारन् : अच्छा अभी लाता हूँ। **(जाता है)**

(श्रीधरन् और अबूबेकर उसकी तरफ देखते रहते हैं।)

श्रीधरन् : लड़के का बदन एकदम काला पड़ गया है।

अबूबेकर : तुम भी बदल गए हो। धूप में खड़े काम करने से एकदम थक गए हो। मगर अब सिर्फ़ दो दिन का काम बाकी है। बस !

श्रीधरन् : ख़ैर, कोई बात नहीं। पार्वती ! जल्दी दौना बनाओ ! भूख भूख लग रही है।

(आइशा और पार्वती दौना बनाने लगती हैं—'कंजी'[1] पीने के लिए। श्रीधरन् और अबूबेकर देखते रहते हैं।)

पर्दा

---

१. उबाले हुए चावल का सूप, जिसमें चावल के दाने भी रहते हैं।

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[रास्ता—दोपहर का समय। आमने-सामने से दो किसानों का प्रवेश। एक बूढ़ा (परङ्ङोटन), दूसरा जवान (वारियर) बूढ़े के हाथ में लकुटी। जवान के पास एक डलिया।]

परङ्ङोटन : क्या तुमने मेरे '**मैलन**' (**बैल**) को कहीं देखा है वारियर[1]।

वारियर : तुम्हारा बैल ! अरे, तुमने बैल कहाँ से लिया था परङ्ङोटन नायर ?

परङ्ङोटन : वही, जो उस दिन खरीदा था, छोटे-छोटे सींग और काली-काली आँखों वाला।[२] ३७ रुपया देना पड़ा था न उसे खरीदनेके लिए।

वारियर : यह क्या कह रहे हो (**परङ्ङोटन**) नायर ? एक बछड़ा और १३७ रुपये ! बाप रे बाप ! क्या रुपया इतना सस्ता समझ रखा है तुमने ? बहुत हुआ तो ५० रुपये देने पड़े होंगे।

परङ्ङोटन : कितना रुपया ? पचास ? और बाकी कहाँ से ला दोगे ? बाकी के लिए तुम 'नैवेद्यान्न'[२] दोगे ? कहने लगे पचास रुपया बहुत

---

१. वारियर—एक हिन्दू उपजाति, जो मन्दिर की सफ़ाई, सुघराई, पुष्प-चयन इत्यादि का काम करती है।

२. वारियर को मन्दिर से मिलने वाला मेहनताना, जो अन्न के रूप में मिलता है।

है। एक सौ सैंतीस रुपये गिन-गिनकर सामने रख दिए तो कहीं जाकर बछड़े की रस्सी खोली गई। और इधर तुम कह रहे हो···

वारियर : हुँ! एक सौ सैंतीस रुपये! रसोईगिरी से मिला हुआ पैसा होगा शायद, और क्या? एक सौ सैंतीस में इस तरह के दो बछड़े खरीदे जा सकते हैं!

परङ्ङोटन : ऐसी बातें अगर दूसरे किसी के मुँह से निकलतीं तो यह परङ्ङोटन नायर दिखा देता। लोग सच्ची बातों पर यकीन करना भूल गए। तभी तो इस मिथुन-कर्कटक (बरसात का मौसम) महीने में भी पानी नहीं बरसता। हाय भगवन्!

वारियर : हुँ! एक सौ सैंतीस देकर तुमने कौन-सा बड़ा ऐरावत खरीद लिया आखिर; मेरे 'चूट्टन' के सामने उसकी क्या हस्ती है जी! कहने लगे वारिश नहीं होती। तुम-जैसों के ज़माने में समुद्र तक सूख न जायगा तो कहना।

परङ्ङोटन : (**घबराते हुए**) हाय भगवन्! मैं यह क्या सुन रहा हूँ। मेरे 'मैलन'-जैसा बछड़ा न हुआ, न होगा। बेचारा तुम्हारा चूट्टन क्या चीज़ है?

वारियर : और तुम्हारा मैलन पचास क्या पच्चीस की भी चीज़ नहीं।

परङ्ङोटन : (**अनुनय के स्वर में**) यह तुम क्या कर रहे हो वारियर? मैं इसमें झूठ क्यों बोलूँ भला? देखो न, एक सौ और सैंतीस—एक पाई भी कम नहीं है इसका दाम। अगर मैं झूठ बोलूँगा तो क्या कोई मुझे ज़्यादा पैसे दे देगा?

वारियर : तो मेरा चूट्टन—उस दिन जब मैंने कहा था कि उसे १२० रुपये में खरीदा था तो तुमने भी क्या कहा था? याद है? कहा था, बीस रुपये अधिक दे आए हो।

परङ्ङोटन : अब मानता हूँ, सो मैंने तुम्हें चिढ़ाने के लिए ही कहा था। वह बैल सचमुच १२० रुपये से कम दाम पर नहीं मिलने का। देखने से ही पता चलता था न?

वारियर : तब तो तुम्हारा 'मैलन' भी एक सौ सैंतीस का ही है। सारे लक्षणों से युक्त।

परङ्ङोटन : हाँ, वही कहो न? मैं तो तुम्हारी बातें सुनकर घबरा रहा था।

वारियर : यह इसीका नतीजा है कि बोलने वाले बोलते वक्त जीभ पर अंकुश नहीं रखते।

परङ्ङोटन : खैर जाने दो। यह कहो कि, तुमने मेरे मैलन को कहीं देखा भी है? दोपहर से ढूँढ़ रहा हूँ।

वारियर : कहाँ चर रहा था?

परङ्ङोटन : उस अबूबेकर के खेत के पास।

वारियर : तो वेलु ने पकड़कर बाड़े में बाँध दिया होगा।

परङ्ङोटन : बाड़े में? अच्छा, उसकी यह मज़ाल? तब तो मैं इसका मज़ा चखा दूँगा। उसने उसका क्या बिगाड़ा था? ज़रा सुनूँ तो। उसका खेत तो उस तरफ़ है कि नहीं? अबबेकर के खेत के उस तरफ़?

वारियर : यह तो ठीक है। मगर तुमको पता नहीं है क्या कि इस बार वेलु, अबूबेकर और श्रीधरन् नायर तीनों ने मिलकर खेत एक कर डाले। इस बार सारे गाँव के खेत सूख गए, मगर इन पट्ठों के खेत हैं कि ईख की तरह हरे-भरे दिखते हैं।

परङ्ङोटन : जैसा दिखता है, असल में फसल उतनी अच्छी नहीं होगी; देख लेना। सब अंकरे (खरपतवार) हैं, अंकरे। समझे? हर खेत पर पच्चीस-पच्चीस आदमियों की ज़रूरत पड़ेगी निराई के लिए, देख लेना।

वारियर : अंकरे ? तुम क्या अंकरे और अनाज के बीच का फ़र्क नहीं जानते ? अगर उनका खेत देखकर दिल में जलन पैदा होने लगी हो तो नमक खाना छोड़ दो। वह तो अव्वल दर्जे का अनाज है। कितने भाग्यवान् हैं वे !

परङ्ङोटन : आजकल बेईमानों का नाम ही भाग्यवान् हो गया है।

वारियर : कुछ न कहो नायर ! सारा ज़माना बदल गया है। तभी तो वेलु भी मन्दिर में घुसने लगा है। और अब यहाँ तक कहने लगा है कि हिन्दू और माप्पिळा एक हैं।

परङ्ङोटन : ज़माने को दोष क्यों दे रहे हो। ज़माना तो मनुष्य ही बनाता है और मनुष्य ही बिगाड़ता है।

वारियर : फिर भी मानना ही पड़ता है, अब की बार उनकी फसल की बड़ी बरकत हुई है।

परङ्ङोटन : इसीका नाम है आसुरी फसल। कलजुग जो है। दुष्टों की पाँचों घी में। और फिर तुम्हें पता है, अधिक पैदावार आफ़त का परकाला—

वारियर : सब वाहियात है। अगर पैदावार अच्छी हुई तो भर-पेट खा सकोगे, और क्या ? मैं अभी अपने खेत पर गया था—सब फसल सूख कर राख हो गई है।

परङ्ङोटन : और मेरी भी सब बरबाद हो गई। देखो न, जब खेतों में मेंढ़कों की 'टर-टर' का मेला लगना चाहिए था, तब धोबी के घर की तरह पड़ा है आसमान।

वारियर : इसीलिए तो दूसरों की उन्नति पर इतनी ईर्ष्या है। कहीं तुमने ही तो मैलन को चुपचाप उन लोगों के खड़े खेत में नहीं खोल दिया ? बड़े ख़तरनाक आदमी हो ?

परङ्ङोटन : (**धीमी आवाज़ में**) घर पर फूंस का तिनका तक न हो तो

क्या करूँ जी ? आखिर मैलन खायगा ही क्या ? १३७ रुपये नकद जो देने पड़े थे। कितने दिन फाके पर रखूँगा। मैं उनके खेत पर खुद छोड़ आया था। कल रात-भर चरता रहा। अगर वे उसे पाउंड में ले जायँ और जुरमाना देना पड़े तो भी घाटा नहीं उठाना पड़ेगा।

वारियर : इस फेर में मत रहो। वेलु रात-भर ऐसा पहरा देता है कि किसी को भी नहीं खाने देगा। पड़ोस के खेत सब सूख गए हैं न ? इसलिए रात-भर पहरा बैठाया है। तुम्हारा बैल कल रात को ही पाउंड में पहुँचा होगा।

परङ्ङोटन : काम तमाम कर डालूँगा मैं सबका। फसल काट-काटकर सामने रख डालूँगा, हाँ! क्या समझ रखा है परङ्ङोटन को ? बदमाश !

वारियर : लो, नंपियार आ गया। उसीसे पूछ लो, क्या करना है।

(नंपियार का प्रवेश)

नंपियार : **(वारियर और परङ्ङोटन को अपनी ओर ताकते देखकर।)** क्यों ?

परङ्ङोटन : अजी नंपियार जी ! कैसी अजीब बात है कि तुम जैसे 'कुटुम'[1] वालों के रहते—

नंपियार : **(बीच ही में)** क्यों, मैं 'कुटुम' वाला हुआ तो क्या ? अपना कुटुम (चोटी) तुम्हारे हाथों सौंप दूँ क्या ?

परङ्ङोटन : वही तो मैं भी कह रहा हूँ। यह ज़्यादती—

नंपियार : मैंने भला, तुम्हारा क्या बिगाड़ा ?

परङ्ङोटन : क्यों, देखते नहीं ? नायर, माप्पिळा और तीयन (अवर्ण) सब मिलकर आसमान सिर पर उठाए हुए हैं। कहते हैं, सहकारी खेती

१. मलयालम में 'कुटुम' का अभिप्राय सिर की शिखा से है। केरल में भी पुराने विचारों के लोग शिखा अवश्य रखते हैं।

हो रही है। क्या तुम यह सब नहीं देखते ? और इतने से भी किस्सा खत्म हुआ ? अब अड़ोस-पड़ोस के लोगों को ढोरों का पालना भी हराम हो गया है। पूछने वाला कोई हो, तब न ?

नंपियार : बताओ न माजरा क्या है ?

परङ्डोटन : पूछ रहे हो माजरा क्या है।

वारियर : हमारे इस मित्र का बैल अबूब्रेकर के खेत में घुस गया और वे लोग उसे पाउंड ले गए, और क्या ? तभी तो यह भूतावेश—

नंपियार : तो इसमें मैं क्या कर सकता हूँ भला ? जाओ, जाकर रपट कर दो कि बैल की चोरी हो गई। और गवाही दिलाओ कि जब खबर पाकर लोग-बाग आने लगे तो ले जाकर पाउंड में बाँध आए।

(पोकर का प्रवेश)

पोकर : क्या बातचीत चल रही है नंपियार !

नंपियार : हमारे परङ्डोटन नायर का वह बैल है न मैलन ? वेलु और श्रीधरन् नायर दोनों ने मिलकर चोरी की है उसकी। और लोग-बाग आये तो पाउंड में बाँध आए। रपट हो जाय तो ऐसा गवाह नहीं निकलता जिसकी गवाही की कोई कीमत हो।

पोकर : बस ? बात इतनी-सी है ? तो होने दो रपट। मैं दूँगा गवाही। और फिर वारियर ?

वारियर : माफ़ करना पोकर। मुझे इतनी फ़ुरसत ही कहाँ कि अदालत जाऊँ। दोनों जून मन्दिर जाना तो है ही। उसी पर गुज़ारा जो ठहरा।

पोकर : तुमको तो दो जून जाना काफी है। इसके बाद छुट्टी। मगर मुझे देखो, सारा दिन दूकान पर बैठा रहना पड़ता है। क्यों नंपियार ?

वारियर : तुम्हारा क्या ? दूकान बंद होने पर भी तुम्हारा कुछ बिगड़ने

वाला नहीं। कंट्रोल से हाथ खूब गरम हो गया है। हमारा वह सौभाग्य कहाँ ?

नंपियार : इस मामले में तुम भी किसी से कम नहीं हो वारियर ! खूब जानता हूँ। सूद और सूद पर सूद लेकर उस पाप को धोने के लिए एक हिस्सा मुनाफे का 'तेवर'[1] को चढ़ा देने से इसकी मार्जना नहीं होगी। याद रखना—

(**सब हँस पड़ते हैं।**)

नंपियार : और सुनो ! अब ज़रूरत है, इस साँठ-गाँठ को समाप्त करने की। वरना नतीजा अच्छा न होगा। सुना है उन लोगों ने कोई शर्त नहीं लगाई है। मैं अबूबेकर का आदमी था। मगर जब देखा कि वह वेलु की बात को मेरी सलाह से अधिक कीमती समझता है तो साथ छोड़ दिया।

पोकर : अगर अबूबेकर जो चीज़ चाहता है, वह वेलु के घर में हो तो फिर वह वेलु का कहना ज़्यादा कीमती क्यों न समझेगा ?

वारियर : यह बात ? तभी तो वेलु की दुधारू गाय जब मैंने मोल लेनी चाही तो वह मुझे न देकर अबूबेकर को देने लगा ? कहा था कि अबूबेकर के लड़कों ने पहले ही माँग रखी थी।

परङ्ङोटन : अबूबेकर के लड़कों की इच्छा पूरी करने वाला यह कौन होता है ?

पोकर : सो मैंने पहले ही कहा न कि—

वारियर : और सुना है कि वह छोकरा अब अबूबेकर के यहाँ जब देखो दिखाई देता है। कौन ? वही सुकुमारन्।

परङ्ङोटन : सब वाहियात है। इन लोगों को काला पानी भेज देना चाहिए।

१. ईश्वर।

पोकर : इनमें से एक को मैं काला पानी न भेज दूँ तो कहना। वह माप्पिळा है न, उसीको। जिस माप्पिळा ने दीन को न माना उसे एक मापिल्ला ही ठिकाने लगा देगा। उसे बेदखल कर दूँगा। और रही तुम हिन्दुओं की बात, सो तुम जानो।

नंपियार : इसीलिए तो मैं कह रहा था। वारियर, तुम एक गवाह अवश्य रहो। एक बार रपट हो गई तो यह वेलु और श्रीधरन् नायर ऐसा फँसेंगे कि कुत्तों की तरह दुम दबाकर हमारे पीछे आते नज़र आयँगे।

परङ्ङोटन : हाँ, कहो न वारियर! इन बेईमानों को सबक सिखाकर ही छोड़ना चाहिए। अगर अब की बार कदम पीछे हटाया तो समझ लेना सारे देश में इनकी काँग्रेस की धाक जम जायगी।

वारियर : अगर तुम सब लोगों की यही इच्छा हो तो फिर मैं भी—

पवङ्ङोटन : तो नंपियार! लिखो न वह क्या नाम—

नंपियार : (**पोकर व वारियर की ओर देखकर, आँखें मटकाकर**) परगोटन, लिखना हो तो पहले सिर ठिकाने रहना चाहिए। क्या यहाँ कहीं कुछ मिलेगा भी?

परङ्ङोटन : इसके लिए अब चंडूखाने में ही जाना पड़ेगा। मगर कमबख्त काँग्रेस ने उसे भी हराम कर दिया है न?

(**सब हँसते हैं।**)

पर्दा

दूसरा दृश्य

[खेत के पास का रास्ता—चक्की और नीली प्रवेश करती हैं।]

चक्की : यह तो अच्छी दिल्लगी रही। खुद मज़दूरी तो देते नहीं, और जो देते हैं, उनके यहाँ काम नहीं करने दिया जाता।

नीली : तुम किसके बारे में कह रही हो री चक्की ?

चक्की : पोकर माप्पिळा है न ? वही। और कौन ?

नीली : तो तुम जाना मत उसके यहाँ। बस, आँख फूटी पीर निकली।

चक्की : अगर न जाऊँ तो जीना दूभर हो जाय। उसीकी ज़मीन पर कुटिया बनाकर रह रही हूँ न ?

नीली : किसके यहाँ काम करने जाना उसने मना किया है ?

चक्की : अबूबेकर माप्पळा के यहाँ। वह चार आना मज़दूरी देता है और दोपहर का खाना भी। कल गई थी मैं काम करने। शाम को घर वापस आई तो क्या देखती हूं कि पूरा लंका-कांड मचा हुआ है। माप्पिळा आकर डरा-धमका रहा था और बाल-बच्चे चीख-चिल्ला रहे थे।

नीली : फिर क्या हुआ ?

चक्की : फिर क्या ? मैंने साफ़-साफ़ कह दिया कि मैं बेगार के लिए तैयार नहीं। तो कहने लगा कि मेरे यहाँ काम करने तुम भले ही न आओ, उस हरामजादे के यहाँ मत जाया करो। अब तुम्हीं कहो—इस बारे में क्या किया जाय ?

नीली : इसमें पोकर का क्या दोष ? अबूबेकर चाहे सोने का अंडा ही क्यों न दे, कोई उसके यहाँ काम करने कभी न जायगा।

चक्की : क्यों ?

नीली : पूछ रही हो क्यों ? तो क्या तुम जाओगी ही ? बेईमान कहीं की ! 'हाय पेट-हाय पेट' चिल्लाने से कुछ बनेगा नहीं, समझी ? वह श्रीधरन् नायर है न, वह जहाँ कदम रखेगा वहाँ घास तक नहीं उगेगी ।

चक्की : सो तो ठीक है । उन्हें जात-पाँत का खयाल कुछ नहीं—यह मैं भी जानती हूँ । मगर इससे क्या ? हमें तो काम करना है और मज़दूरी लेनी है ।

नीली : लानत है ऐसे काम और उसकी मज़दूरी पर । न जात-पाँत का खयाल है; और न छुआ-छूत की फ़िक्र । कोई आदम-ज़ाद ऐसों के यहाँ मज़दूरी करने थोड़े ही जायगा । मैं तो वारियर के यहाँ काम करने जा रही हूँ । वहाँ काम न हो तो और कहीं जाऊँगी, जहाँ काम मिलेगा । या फिर घर पर बैठकर जूँ के अंडे चुनूँगी ।

चक्की : चुपचाप घर पर बैठूँ तो रात को खाऊँगी किसके यहाँ ? बारिश है कि थमने का नाम नहीं लेती । घर पर चावल का दाना नहीं । लड़के को दस्त हो गए हैं । और काढ़ा बनाकर देना चाहूँ तो घर पर कौड़ी तक नहीं है बूटियाँ खरीदने···

नीली : तुम्हें तो टोने-टेटुए की चिंता है । मेरे यहाँ का यह हाल है कि तीन दिन से अंगीठी तक नहीं जली । लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मैं धर्म और ईमान बेचकर बसर करने वालों के यहाँ जाकर काम करूँ ।

(वेलु का प्रवेश ।)

वेलु : आओ चक्की, चलो हमारे खेत में । बाकी लोग कहाँ हैं ?

चक्की : अब चक्की नहीं आ सकती जी ! चक्की को और काम है ।

वेलु : मैंने कल से ही तुम्हें कह रखा था न कि—

नीली : आप कौन होते हैं पूछने वाले ? हम अपनी मर्ज़ी से काम करेंगी ।

(**दोनों जाती हैं तो वेलु हक्का-बक्का रह जाता है। अबूबेकर का प्रवेश**)

अबूबेकर : क्यों वेलू, खोये-खोये-से क्यों खड़े हो ?

वेलु : हुँ! क्या कहूँ माप्पिळे ! जिस किसी को खेत में काम करने को बुलाता हूँ, आना तो दूर, उलटा चला जाता है। खेत का यह हाल है कि जहाँ देखो घास-ही-घास है।

अबूबेकर : कल श्रीधरन् नायर ने कहा था कि पचास आदमियों की ज़रूरत होगी निराई के लिए। तो मैंने कहा—सब फ़िज़ूलखर्ची है। हम सब मिलकर सुबह-सुबह खेत के पूरबी किनारे से काम शुरू करेंगे। और ज्वार शुरू होते ही घर वापस जायँगे।

वेलु : श्रीधरन् नायर कहना मानें तब न ? सब-कुछ बाकायदा शुरू से ही करने की आदत है उनकी। जो वे अक्सर कहते हैं, वह सही भी निकलता है। पता नहीं, यह सब कहाँ से सीखा उन्होंने। ऐसा नहीं लगता कि खेती के क्षेत्र में वे नौसिखिये हैं।

अबूबेकर : इसके लिए अक्ल काफ़ी है बेलु ! मगर अक्ल लड़ाने से खेत की निराई नहीं होगी। आदमी की मेहनत चाहिए इसके लिए। (**दूर देखकर**) लो, वे दो औरतें आ रही हैं।

वेलु : तुम्हीं बुलाओ। बाज़ आया मैं तो।

(**पात्तुम्मा और कुरुम्पा का प्रवेश**)

अबूबेकर : आओ आओ, हमारे खेत में उतर जाओ। चार-चार आने और दोपहर का खाना सो अलग।

पात्तुम्मा : मज़दूरी की बात तो ठीक है। मगर हम लाचार हैं।

अबूबेकर : क्यों ?

पात्तुम्मा : हमको वारियर यजमान (**मालिक**) ने मना किया है।

अबूबेकर : वह क्यों ? क्या हम पैसे नहीं देते ?

पात्तुम्मा : पैसा हुआ तो क्या सब-कुछ हो गया ? आप लोगों को न धरम-ईमान का खयाल है, और न···

कुरुम्पा : (**आगे बढ़कर**) हम आयें किसका काम करने ? माप्पिळा का, तीयन (**अवर्ण**) का, या नायर का काम करने ? इसका फैसला पहले हो जाय। आओ पात्तुम्मा, चलें। (**दोनों जाती हैं।**)

(**वेलु अबूबेकर की ओर देखकर हँसता है।**)

अबूबेकर : (**हँसते हुए**) वेलू ! क्या तुम इस बुढ़ापे में मुसलमान बनने के लिए तैयार हो ?

वेलु : अब किसी को बुलाना बेकार है। सारे गाँव ने मुँह मोड़ लिया है।

अबूबेकर : मगर इसमें हमारा क्या कसूर ? हमने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा।

वेलु : नहीं बिगाड़ा तो क्या हुआ ? असूया के लिए भी कोई कारण चाहिए ! देखो न, थोड़ी-सी हरियाली अगर कहीं है तो हमारे खेत में ही। बाकी सब सूख गई।

अबूबेकर : या खुदा ! यह कैसी मुसीबत···

(**श्रीधरन् नायर का प्रवेश**)

श्रीधरन् : क्यों, क्या हुआ ? मज़दूर नहीं मिले ?

वेलु : जिसको बुलाया उलटे पाँव चला गया। खूब छका दिया हमें।

अबूबेकर : हम बुरी तरह फँस गए हैं बेटा !

श्रीधरन् : कोई बात नहीं—'खेती खसम सेती''। घर के लोग भी निराई में अब हाथ बाँटेंगे। सारी खबर सुनेगी तो माँ खुद तैयार हो जायगी। हम अपना काम खुद करेंगे। इसमें तो कोई अड़ंगा नहीं डालेगा न ?

अबूबेकर : मगर एक बात। माँ काम करने नहीं आयगी। जब तक मेरी

आँखें बंद नहीं होंगी, माँ को काम नहीं करने दूँगा।

वेलु : सो तो ठीक ही कहा अबूबेकर ने। पहले कभी ऐसा नहीं हुआ।

श्रीधरन् : इसके पहले यह भी नहीं हुआ था न, कि खेत के काम के लिए मजदूर बुलाये जायँ और वे इन्कार कर जायँ ? अब तो हम नया तरीका अपना रहे हैं न, जिसके लिए पुराने रिवाज़ों का रास्ता छोड़ ही देना होगा।

वेलु : (**सीने पर हाथ रखकर**) हाय राम, यह अँकरा तो आदमी के उखाड़े उखड़ने वाला है नहीं ?

अबूबेकर : वेलू, घबराओ नहीं। अल्लाताला के रहम से सब अँकरे उखड़ जायँगे। देख लेना।

(नेपथ्य से निराई का गाना सुन पड़ता है। पीछे का पर्दा उठता है तो वहाँ सुकुमारन्, पार्वती और आइशा निराई करते दीखते हैं। आइशा और पार्वती गाती हैं।)

दुश्मनों को जिसने भगा दिया
देश की गुलामी को काट दिया
हमको गरीबी की दलदल से
ऐश्वर्य की घाटी में बसा दिया।
घिरे हुए चालीस करोड़ भारतीयों को
मान-अभिमान का सबक सिखा दिया

अबूबेकर : वेलू, यह एक ही मंत्र काफ़ी है जो—

वेलु : ठीक है। यह मंत्र गाते-गाते खेत पर उतर जायँगे तो साँझ के पहले सब खरपतवार साफ़।

(सब निराई में लग जाते हैं।)

पर्दा

तीसरा दृश्य

[अबूबेकर का घर। प्रभात काल। अबूबेकर खाट पर बैठा है। आइशा उदास खड़ी है। कभी वह इधर-उधर ताकती हुई धीरे-धीरे कुछ कहने लगती है।]

आइशा : अब जा रही हूँ। तुम सबने मुझे खूब प्यार किया।

अबूबेकर : **(मुड़कर)** बेटी आइशा!

(आइशा पास जाती है। आँखें भर आई हैं। अबूबेकर उसका सिर सहलाता है।)

अबूबेकर : **(काँपते स्वर से)** दुःख मत करना बिटिया! खुदा की मर्ज़ी। इसे कौन टाल सकता है?

आइशा : बाप्पा! अब हम कहाँ जायँगे? बादल उमड़ आए हैं। **(मुँह फेरकर आँखें पोंछती है।)** माँ है जो अपंग पड़ी है। मुझे इसीकी फ़िक्र है।

अबूबेकर : बेवक्त की यह बरसात भी शुरू हुई। अल्ला सज़ा पर सज़ा देता जा रहा है।···फ़िक्र न करना बेटी! नंपियार हमारे लिए कोई एक घर ढूंढ़ ही निकालेगा।

आइशा : बाप्पा! तुम अब भी नंपियार पर भरोसा किये हुए हो?

अबूबेकर : भरोसा न करूँ तो फिर क्या करूँ बेटी!

आइशा : उसीने हमें धोखा दिया था।

अबूबेकर : बेटी! धोखा देने वाले को अल्ला सजा देगा। हमें आदमी पर भरोसा करना ही पड़ेगा। सामने दिखाई पड़ने वाले आदमी पर भरोसा न करेंगे तो क्या दिखाई न पड़ने वाले अल्ला पर हम ईमान ला सकेंगे?

आइशा : **(एक तरफ देखकर)** इस अड़ानी के पास बैठकर मैं इक्का

(भाई) के साथ खेला करती थी।

अबूबेकर : अब यह सब याद करके क्या करोगी बेटी? यहीं जनम लिया था। इस खयाल से मुसीबत के वक्त भी घर छोड़कर कहीं न गया था।

आइशा : तो क्या एक जमाने में इससे भी बड़ी मुसीबतें हमें झेलनी पड़ी थीं, बाप्पा!

अबूबेकर : हाँ बेटी! जिस साल तुम्हारी माँ को निकाह करके लाया था, उस वक्त की घटना है। उन दिनों बाप्पा ही घर का काम सँभालते थे। बाप्पा के नाम वारंट आया। जेल जाते वक्त मैंने कहा—'बाप्पा, झोंपड़ी गिरवी रखकर कर्ज़ा चुका दो न!' तो बाप्पा ने कहा—'नहीं बेटा, घर बेचकर कर्ज़ा चुकाने से जेल जाना बेहतर है।' (**आँसू पोंछकर**) मगर आज वही घर मेरे कारण जा रहा है···

आइशा : जन्मी (**ज़मींदार**) बेदखली करे तो कोई क्या कर सकता है बाप्पा? (**दोनों थोड़ी देर चुप रहते हैं।**) वह लाल नारियल का पेड़ फल देने लगा है। अब उसकी देख-भाल कौन करेगा?

अबूबेकर : हाँ, अब तक तुम्हीं उसे रोज़ पानी देती थीं। (**थोड़ी चुप्पी के बाद गंभीर होकर**) बेटी! जिसे पास नहीं रहना है, उस पर आँसू बहाना बेकार है। तुम जो कुछ चाहती हो अल्लामियाँ से माँगा करो! जिसने यह सब दे रखा है वह इससे भी ज़्यादा दे सकता है। (**गद्गद् स्वर से**) बेटी! अमीन आयगा तो रोना नहीं। यह अच्छा नहीं।

आइशा : क्या श्रीधरन् नायर को इसकी खबर दी है?

अबूबेकर : श्रीधरन् नायर को मैं अपने बेटे-जैसा ही समझता हूँ। फिर भी मैं उससे कैसे कहूँ कि 'मैं हार गया'।

आइशा : तुम इक्का से जिस तरह कहते थे, उसी तरह उससे भी कह सकते हो, बाप्पा!

(नंपियार आता है। चेहरा गम्भीर है। कुरसी पर बैठ जाता है।)

नंपियार : दो दिन में कम-से-कम तीस घर छान डाले।...

अबूबेकर : तो क्या हुआ ? मिला कोई घर ?

नंपियार : कहाँ ? इस बरसात के मौसम में कोई घर खाली करे तब न ? **(गम्भीर होकर)** मैं तो यही कहूँगा कि अगर तुम पोकर से थोड़ी मुहलत माँगोगे को वह ज़रूर देगा।

अबूबेकर : उसकी बात छोड़ दो। जब इसकी नौबत आयगी तो मैं इससे बेहतर यही समझूँगा कि किसी गली में पड़े-पड़े बेमौत मरूँ।

नंपियार : ज़िद ठीक नहीं जी ! ज़िद्दी का नाश निश्चित है।

अबूबेकर : **(थोड़ा सोचकर)** तो नंपियार ! कानून कहता है, पीढ़ियों से जो जिस घर में रहता है, वह उसीका है। उस पर उसीका हक है। तो हम ही उस हक से क्यों महरूम रह गए ?

नंपियार : मैं क्या जानूँ भला ? इसीलिए तो मैंने पहले ही कह रखा था कि सुनवाई के वक्त तुम भी अदालत में रहा करो। अब मुकदमे में हार गए तो तुम्हारे मन में तरह-तरह के शक—

अबूबेकर : शक की कोई बात नहीं नंपियार। असली बात जानना चाहता था, बस। चाहता था कि अगर सही हो तो अमीन को इससे ज़रा आगाह करा दूँ।

नंपियार : ज़रूर-ज़रूर। खुद अमीन से कहकर आजमा लो। तुम्हें इससे अगर कुछ फ़ायदा हुआ तो मेरी खुशी का ठिकाना न रहेगा। और इधर ऐसे लोग भी मौजूद हैं जो कहेंगे कि अमीन को टालने के लिए जो पैसा नंपियार को दिया था उसे भी वह हजम कर गया।

अबूबेकर : तुम नाहक शुबहा कर रहे हो नंपियार ?

नंपियार : जो अभागों की संगति में आता है वह भी दुर्भाग्य में फँस जाता है।

(अमीन व पोकर का प्रवेश। आइशा अन्दर जाती है। अमीन कुर्सी पर बैठता है। पोकर खड़ा रहता है।)

अबूबेकर : **(पोकर से)** बैठो न ! **(पोकर बैठता है।)**

अमीन : **(नंपियार से)** बड़े भाग्यवान् हो जी !

नंपियार : जी हाँ अमीन जी ! आजकल आफ़त के मारों का नाम ही भाग्यवान् हो गया है।

अमीन : **(अबूबेकर की ओर देखकर)** यही प्रतिवादी हैं न ?

नंपियार : मगर ज़रा सब्र करना अमीन जी ! **(नंपियार पोकर के साथ एक ओर चला जाता है और वे आपस में कानाफूसी करते हैं।)**

अमीन : बेदखली का आदेश है। माल-असबाब खाली कर दो !

अबूबेकर : दोपहर तक खाली कर दूँगा अमीन जी ! तब तक बारिश थम जायगी शायद।

(नंपियार और पोकर यथास्थान आ बैठते हैं।)

नंपियार : एक सुझाव है।

अमीन : कहो, क्या कहना है तुम्हें ?

नंपियार : **(अबूबेकर से)** बात यह है कि पोकर चाहता है कि मामला बेदखली के बिना ही किसी तरह तै हो जाय। मगर इसके बदले में तुमको एक काम करना होगा। क्यों ?

अबूबेकर : **(अचरज के साथ)** क्या करवाना चाहते हो ?

पोकर : मंजूर हो तभी करने का सुझाव दूँगा। बात यह है कि तुम पट्टा लिख दो और यहीं रहो पट्टेदार की हैसियत से। इसके एवज़ में— वह श्रीधरन् नायर का खेत है न, मेरे खेत के पास ही, उस पर मुद्दत से मेरी नजर पड़ी है। उसे तुम मुझे बेच दो। खासी कीमत मिल जायगी तुम्हें।

नंपियार : दे दो न मियाँ ! खेत पर तुम्हारा दखल है कि नहीं ? तुमको

घर के सामने ही खेत मिल जायगा।

पोकर : हाँ, श्रीधरन् नायर के खेत से भी उपजाऊ—

अबूबेकर : मगर वह खेत अब मुझ अकेले के दखल में नहीं। नंपियार सब जानते हैं। अबकी बार मैं, श्रीधरन् नायर, वेलु—सब मिलकर उसमें काम कर रहे हैं।

पोकर : तो यह कहो कि हिस्सेदारों की तादाद बढ़ गई है।

नंपियार : तभी कहा था न मैंने ? आखिर जिससे डरता था वही हुआ कि नहीं ? श्रीधरन् नायर ने तुम्हें खूब छका दिया। अब यह हाल हो गया है कि जो खेत अपने कब्ज़े में था, उसमें अपनी मर्ज़ी के अनुसार कुछ कर नहीं पा रहे हो। (**सोचकर**) खैर, इसका भी उपाय है। तुम अपना हक़ दे दो। श्रीधरन् नायर को तो पोकर निबटा लेंगे।

पोकर : श्रीधरन् नायर पोकर से खिलवाड़ करने नहीं आयगा, समझे ? खेत पर क़दम रखने भी नहीं दूँगा। हाँ !

अमीन : किसी तरह मामला तै होने दो न अबूबेकर ? पोकर आदमी तो भला है। तभी तो वह चाहता है कि बाप-दादों की बनाई झोंपड़ी से बेदखल करने की नौबत न आय।

नंपियार : और हम भी यह नहीं चाहते कि तुम इस घोर वर्षा में घर से निकल जाओ और हम बैठे-बैठे ताकते रहें।

अबूबेकर : यह तो मैं कभी नहीं करूँगा। श्रीधरन् नायर ने मेरे भरोसे पर ही यह सब इन्तज़ाम कर रखा है। अगर अब मैं तुम्हारे कहे अनुसार कर डालूँ तो बड़ी बदनामी होगी।

पोकर : तो यह कहो कि तुम अपनी औलाद की मदद करने की बनिस्बत एक काफ़िर को खुश रखना ज़्यादा पसंद करोगे। खैर, जाने दो। मैं तो अब खुदा के दरबार में गुनहगार न रहूँगा।

अबूबेकर : तुम यह न कहो पोकर, कि वे लोग काफ़िर हैं। इसका फैसला

तो हश्र के दिन ही होगा कि कौन काफ़िर है और कौन इस्लाम।

पोकर : तो फिर घर खाली कर दो। (**अमीन से**) तुम्हें घर खाली करा देना होगा।

अमीन : ऐसी हालत में तुम्हें घर खाली करना ही होगा।

अबूबेकर : दोपहर तक खाली कर दूँगा। ज़रा हमारे वेलु को आने दो।

नंपियार : वेलु के पास घर कहाँ से आयगा ? तुम नाहक हठ कर रहे हो।

पोकर : अब वेलु ही गाँव का बड़ा 'जन्मी' बन गया मालूम होता है।

नंपियार : (**उठकर**) मुझे जो कुछ कहना था, कह दिया। ज़िद का नतीजा अच्छा नहीं होता। खैर, अब मैं नहीं चाहता कि ये लोग तुम्हें घर से बाहर निकाल दें और मैं सब देखता रहूँ।

अमीन : बैठो नंपियार। मैं भी आता हूँ।

अबूबेकर : इसमें क्या है नंपियार ? इसमें तुम्हारा कोई क़सूर नहीं।

पोकर : तो अब देरी क्यों ? अगर आपसे हो सके तो इन्हें घर से बाहर कर दीजिए। वरना आगे क्या करना है, मैं जानता हूँ।

अबूबेकर : बढ़-बढ़कर बातें न करो पोकर ! आज मुझ पर यह आफ़त बीती है। कल तुम्हारी भी बारी आयगी।

पोकर : यह डींग मेरे घर पर बैठकर मत मारो। निकल जाओ बाहर।

अइशा : (**प्रवेश करके**) बाप्पा उठो। सब असबाब बाँध लिया है। हम यहाँ से अभी निकल जायँगे।

अबूबेकर : (**अधीर होकर**) कहाँ जायगी बेटी ? (**अमीन मुँह फेर लेता है। पोकर अकड़ के साथ ठहलता है। वेलु और श्रीधरन् नायर का प्रवेश।**)

श्रीधरन् : (**अबूबेकर का हाथ थामकर**) मेरे ही घर, और कहाँ ? अगर

हम एक ही खेत पर काम कर सकते हैं तो एक छत के नीचे रह भी सकते हैं !

(पोकर अमीन और नंपियार आपस में चकित भाव से देखते हैं।)

श्रीधरन् : (आइशा से) पार्वती आयी है। तुम माँ को लेकर उसके साथ चलो। मैं बाप्पा को ले आता हूँ।

आइशा : उम्मा चल नहीं सकती।

श्रीधरन् : सो मैं जानता हूँ। बाहर पालकी है। हाथ पकड़कर धीरे-धीरे वहाँ तक ले चलो। क्यों, नहीं हो सकता ?

आइशा : हाँ, थोड़ी दूर चल सकती है।

श्रीधरन् : यह मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ कि आपको मैं अपने ही घर के आदमी के रूप में स्वीकार कर रहा हूँ। आज से आप ही हमारे घर के 'कारणवर' (कर्त्ता) हैं। आइए। (अमीन से) आप अपना काम शुरू कर सकते हैं।

अमीन : आपको मैं बधाई देता हूँ नायर ! इस पापी पेट के लिए यह भेष धरकर आप-जैसे व्यक्ति के सामने जब खड़ा हो जाता हूँ तभी मुझे अपने ओछेपन का खयाल आता है।

श्रीधरन् : कोई बात नहीं अमीन। असल में ज़मींदारी-व्यवस्था ठीक नहीं है जो अपने ही भाई को दर-दर की ठोकरें खाने के लिए लाचार करती है। यह जन्मी जो है, असल में वही मेरे और आपके पेट का ठेकेदार है। यह ठेकेदारी बदलनी होगी। इसे बदल ही डालना होगा। जिस दिन हमें इसमें सफलता मिलेगी उस दिन यह जड़त्व-बोध समाप्त हो जायगा।

पार्वती : (**प्रवेश करके आइशा का हाथ थामकर**) आओ, उम्मा पालकी पर बैठ चुकी।

अबूबेकर : चलो बेटी, मैं आता हूँ।

वेलु : नहीं जी ! तुम भी चलो। सामान मैं सँभाल लूँगा।

अबूबेकर : (श्रीधरन् से) बेटा, तुम्हें अल्लाह ने मेरे पास भेजा है।

(अबूबेकर का हाथ पकड़कर आगे-आगे श्रीधरन्, और आइशा का हाथ पकड़कर पार्वती पीछे-पीछे जाती है।)

[यवनिका-पतन]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[चौराहा । शाम का समय। परङ्ङोटन नायर और वारियर। नायर वारियर का हाथ बलपूर्वक पकड़े हुए हैं ।]

परङ्ङोटन : नंपियार को दिखा दो। नहीं तो तुम्हें जाने नहीं दूँगा।

वारियर : (हाथ छुड़ाते हुए) तुम्हें हो क्या गया है ? क्या मैं नंपियार को अपनी हथेली में लिये घूमता हूँ ?

परङ्ङोटन : हाँ, तुम्हारी हथेली ही में तो था। तुम्हीं उस शैतान को मेरे पास लेकर आए थे। तभी तो अब मैं इस बुरी तरह फँस गया हूँ कि—

वारियर : तुम क्यों फँसने लगे ?

परङ्ङोटन : पूछते हो क्यों फँसने लगे ? जब देखो पुलिस पीछे···

वारियर : पुलिस से तुम्हारा क्या वास्ता जी ? क्या कहीं मुद्दई को भी पुलिस पकड़ने जाती है ?

परङ्ङोटन : हाँ, इस बार पुलिस ने यही किया।

वारियर : यह झूठी नालिश का नतीजा है। समझे ? झूठ-मूठ ही शिकायत की थी तुमने कि वेलु और श्रीधरन् नायर ने मिलकर मेरे बछड़े को चुरा लिया है।

परङ्ङोटन : तुम और तुम्हारे उस शैतान नंपियार की सलाह से ही मैंने वैसा किया था ।

वारियार : इससे क्या हुआ ? बछड़े को पराये खेत पर छोड़ आने की सलाह किसने दी थी ? मैंने दी थी । या फिर नंपियार ने ही ।

परङ्ङोटन : (**नकल करते हुए**) मैंने दी थी या नंपियार ने ! अब देख लेना क्या गुल खिलता है । मैं दारोगा से मिलकर सब बातें कर चुका हूँ । अब उसे पकड़ लाने के लिए मुझे भेजा गया है ।

वारियर : ले जाकर क्या करोगे ?

परङ्ङोटन : लोगों को हक-नाहक चकमा देने वालों को क्या करना चाहिए, वही । (**अनुनय से**) तुमने उसे कहीं देखा भी है ? कहाँ है वह ।

वारियर : (**दूर देखकर**) अच्छा, बता दूँगा । क्या तुम कल अपने मैलन को जोतने दोगे ?

परङ्ङोटन : हाँ-हाँ, दे दूँगा, क्यों नहीं ? अहा ! मेरे मैलन का क्या कहना ! देख लेना वह किस शान से चलेगा ।

वारियर : ज़रूर दोगे मैलन को ?

परङ्ङोटन : हाँ-हाँ, ज़रूर !

वारियर : कसम खाओ । (**हाथ बढ़ाता है**)

परङ्ङोटन : कसम खाता हूँ (**हाथ-पर-हाथ मारकर**) कहाँ—

वारियर : (**दूर की ओर इशारा करके**) लो, वह आ रहा है । पोकर भी है साथ । वह तुर्की टोपी वाला कौन है ? अरे ! यह तो अबूबेकर का बेटा है न ? बापु—

परङ्ङोटन : किसी से न कहना कि मैं नंपियार को···

(**नंपियार, पोकर और बापु का प्रवेश**)

परङ्ङोटन : नंपियार जी !

नंपियार : **(मुड़कर)** क्या है जी ! क्या हुआ ?

परङ्ङोटन : सब ठीक हो गया। मगर कहीं कुछ कसर रह गई है। सो दारोगा ने बुलाया है तुमको।

नंपियार : कौन-सी कसर ?

वारियर : हड्डी तोड़ने की।

परङ्ङोटन : **(वारियर की ओर घूमते हुए)** वही, वह न, उसकी हड्डी तोड़ने के लिए हमने जो अरज़ी भेजी थी उसमें कहीं कुछ कसर रह गई है। शायद—

नंपियार : **(सोचकर)** शायद कुछ जोड़ना होगा उसमें। चालान करने का इरादा है···। **(पोकर से)** देखा, हमारी चाल बेकार नहीं गई।

पोकर : हाँ, ऐसा ही लगता है। नसीब हो तो सब ठीक होगा।

नंपियार : तो मैं अभी आया। तब तक यहीं ठहरना।

(नंपियार, वारियर व परङ्ङोटन का जाना)

पोकर : नंपियार बड़ा नेक आदमी है। अभी देखा न, तुमको ढूँढ़ निकालने के लिए उसने कितनी तकलीफ़ उठाई ? यह सब इसलिए कि तुम्हारे बाप का वह असली खैरख्वाह है।

बापु : इसमें क्या शक ? जब वह आया था तो मैं मलबार रैस्तोराँ में बैठा था। हमारे ही यहाँ का कोई मुसलमान उसे चलाता है। आफ़िस जाते समय और छुट्टी की दरख्वास्त देते समय—हर वक्त वह मेरे साथ ही रहा।

पोकर : कहीं फिर भाग न जाय—इस खयाल ही से तो। बड़ा दिलदार आदमी है वह।

बापु : ठीक कहा। बापा को श्रीधरन् नायर ने जो धोखा दिया उसका किस्सा वह रास्ते भर बताता रहा। कहते-कहते बेचारे की आँखों से आँसू आने लगे।

पोकर : वह तो वह, दुनिया में कोई भी ग्राँसू रोक न सकेगा।

बापु : अगर दूसरों की यह हालत हो तो ज़मीन के मालिक की बात ही क्या ? घर भी गया, खेत भी···

पोकर : इसकी फ़िक्र तुम बिलकुल छोड़ दो बेटा ! अपनी बेदखली के पहले तुम मेरी मौत देखोगे।

बापु : सो तो है ही। और नंपियार ने यह भी कहा था कि तुमने यह सब क्यों किया ?

पोकर : क्यों नहीं कहेगा ? हालाँकि वह हिन्दू है तो भी भला है। समझ लो कि अगर मैं उस दिन ऐसा न करता तो खेत पर काफ़िर का दखल हो जाता।

बापु : बेशक ! नंपियार ने कहा था कि बापा चाहते थे कि खेत का हक श्रीधरन् नायर को दे दें।

पोकर : ज़रा सोचो तो सही। खेत पर काश्त का पुश्तैनी हक है। सरकार है कि लगान में भी रियायत कर दी है। यह हक किसी को देकर तुम्हारे बापा साझे पर खेती करने क्यों जायँ ?

बापु : बुरा हुआ। बापा को खूब चकमा दिया गया है। इनकी चालबाज़ी बापा क्या जानें ?

पोकर : ये हिन्दू जो हैं, इसी तरह मुसलमानों को दगा देते आ रहे हैं। मेहनत करें हम, और मौज उड़ायँ वे।

बापु : इनका नंगा नाच देखना चाहो तो बंबई में जाओ। मगर मुसलमान भी चुप नहीं। काफ़िरों को बराबर हलाल करते जा रहे हैं।

पोकर : हाँ, ऐसी हालत में मुसलमान चुप कैसे रह सकते हैं भला ! तो हम मुसलमान कहलाने लायक रहेंगे भी क्या ?

बापु : जिसने मेरे बापा को धोखा दिया उसे मैं यों छोड़ूँगा नहीं।

पोकर : और अब तक किसी मुसलमान ने यों छोड़ा भी नहीं किसी को।

अब रही बेदखली की बात, सो जब तक पोकर ज़िन्दा रहेगा तुम्हारी खुदकाश्ती का हक़ नहीं छूटेगा, समझ लो! अगर खेत मुझे हथियाना होता तो इतने टके खर्च करके तुम्हें ढूँढ़ने को आदमी थोड़े ही भेजता।

बापु : सो जैसी तुम्हारी मर्ज़ी।

पोकर : काफ़िर को उसमें कभी कदम रखने भी नहीं दूँगा। और तुम्हीं सोचो, यहाँ और भी कितने ही मुसलमानों के घर हैं। उस काफ़िर के घर ही क्यों गये तुम्हारे बाप? पहले भी कभी ऐसा हुआ था क्या? और जाने पर कभी हमें अंदर घुसने भी दिया था? और साथ में एक सयानी लड़की। अब कोई मुसलमान सिर उठाकर रास्ते से कैसे चल सकता है?

बापु : **(ग़म व तौहीन से जोश में आकर)** काका! मेरी बहन है, माँ है और बाप। मगर जबकि वे दीन के खिलाफ़ हैं, समझूँगा वे मेरे कोई नहीं। दीन के खिलाफ़ मैं कभी नहीं जाऊँगा। और फिर जिसने यह सब तौहीन की, उसका तो मैं खून करके ही छोड़ूँगा। बापा की कसम!

पोकर : धीरे से कहो, नंपियार आ रहा है। कैसा भी क्यों न हो, आखिर वह काफ़िर ठहरा।

बापु : बेशक—

(नंपियार का प्रवेश। सिर कपड़े से ढँका, लँगड़ाकर चलता है।)

पोकर : क्यों, क्या हो गया है तुम्हें अचानक?

नंपियार : वह···कुछ नहीं ज़रा गिर पड़ा था, नीचे ज़मीन पर। पुलिस-स्टेशन से आ रहा था न···पैर फिसल गया था··· **(पास आकर बैठ जाता है।)**

बापु : देखूँ ज़रा (सिर से कपड़ा हटाकर) बाप रे ! सिर फूट गया है। (**गाल पर छूकर**) गाल सूज गया है।

पोकर : और नायर और वारियर कहाँ गए ?

नंपियार : दोनों कमबख्त हिरासत में हैं। जिरह करने पर दोनों ने ग़लत बयान दिया। दारोगा वहीं खड़ा था। उसने दोनों को यह कहते हुए कमरे में बंद कर दिया कि झूठ बोलने का इलज़ाम लगाकर दोनों को सज़ा दी जायगी।

पोकर : नंपियार ! असल में तुम गिरे ही थे या और कुछ···सच-सच बताना।

नंपियार : अरे मियाँ, झूठ क्यों बोलूँ ? सीढ़ी से गिर पड़ा था, बस !

बापु : (**नंपियार को थामते हुए**) उठिये, धीरे-धीरे चलेंगे।

(तीनों का प्रस्थान)

[यवनिका-पतन]

दूसरा दृश्य

[खेत—सवेरे का समय। सुकुमारन् और वेलु खड़े हैं। वेलु के हाथ में कुदाल।]

सुकुमारन् : धान की बालें उलट पड़ी हैं। अब तक मैं मेंड में से उन्हें हटाकर खेत की ओर पलट रहा था।

वेलु : बालों के बोझ से उलट गई थीं। खूब फँसीं है न, इसलिए। इस पर किसी की बुरी नज़र न पड़े तो हम बचें। कुर्ता भीग कैसे गया ?

सुकुमारन् : बालों को खेत की ओर मोड़ते हुए। मन नहीं करता था कि इन्हें पैरों से मोड़ूँ। इसलिए हाथ से काम किया था।

वेलु : (हँसकर) ठीक ही तो है। जिसने पैदा किया हो उसका जी कैसे करे कि दानों का बोझा मेंड़ पर लेटी हुई इन बालों को पैरों से पलटाकर उतारे।

सुकुमारन् : पानी कुछ उतर गया है, है न वेलू ? मैं डर गया कि—

वेलु : अरे ! अगर पानी अपने-आप उतर न जाता तो यह वेलु है कि उतारकर ही छोड़ता। वेलु के सामने बारिश के पानी की भी क्या हस्ती ?

सुकुमारन् : अगर दो दिन और पानी रुका रहता तो पता चलता।

वेलु : अजी ! पता क्या चलता ? वेलु एक दिन चुपचाप जाकर पास की मेंड़ तोड़ देता, और क्या ? हमारे खेत का पानी परङ्ङोटन नायर की मेंड़ के साथ उस तरफ जो पोखर है, उसमें जा गिरेगा और पोखर पट जायगा, बस !

सुकुमान् : यह तो अच्छी दिल्लगी रही। तो क्या परङ्ङोटन नायर के खेत में धान नहीं उगते ? जैसे हमारे धान की बरबादी, वैसे उसकी भी बरबादी।

वेलु : ये सब दलीलें और किसी से कहना। अगर परङ्ङोटन नायर का खेत बरबाद होगा तो परङ्ङोटन नायर ही उसे देख लेगा। और वेलु के धान की बात वेलु ठीक कर लेगा।

सुकुमारन् : (सिर हिलाते हुए) बहुत अच्छा।

वेलु : बहुत अच्छा ही होगा। उस बदमाश ने नालिश की थी कि नहीं कि श्रीधरन् नायर और वेलु ने मिलकर उसके बैल की चोरी की है ? तुम्हारे नेक भाई पर ऐसा दोष लगाना कितना बड़ा पाप है ! हमने उसका क्या बिगड़ा था ?

सुकुमारन् : इसका फल उसने खुद भुगत भी लिया कि नहीं ? और उसके सलाहकारों को भी मजा चखाया गया । लाख बुरा हो, उसे मारना बड़ा अन्याय था । अगर पहले ही पता चलता—

वेलु : पीटा गया तो क्या हुआ ? लोगों का खयाल है कि पुलिस अभी वही है जो पहले मुट्ठी खूब गरम करती थी ।—

सुकुमारन् : (**नेपथ्य की ओर देखकर**) यह कौन आ रहा है ?

वेलु : अरे ! यह तो अबूबेकर का बेटा है न ?

सुकुमारन् : कौन, बापु ?

(**बापु का प्रवेश**)

वेलु : कब आए तुम, बापु ?

बापु : तुम सबने मिलकर हमको खूब छकाया ।

(**वेलु स्तब्ध रहता है ।**)

सुकुमारन् : बापु, तुम कब आए ?

बापु : कल—

सुकुमारन् : तो ?···अब तक हज़रत यहाँ तक ही पहुँचे ? बापा से मिलने क्यों न गए ?

बापु : (**दृढ़ स्वर में**) बापा से मिलना हो तो आप लोगों की इजाज़त चाहिए न ?

सुकुमारन् : सो क्यों ? हमारा घर तुम्हारे बापा का ही घर समझो ! इस नाते तुम्हारा भी वही घर है ।

बापु : मिस्टर नायर ! ज़्यादा बनिये नहीं । मैं एक मुसलमान हूँ । साफ़गोई मेरी आदत है । मैं बनना नहीं जानता । और किसी का बनाना भी मुझसे देखा नहीं जाता । तुम्हारा घर कभी मेरा घर नहीं बन सकता । मैं अभी एक मुसलमान हूँ ।

सुकुमारन् : (**मुस्कराकर**) तो क्या तुम्हारा बापा मुसलमान नहीं ?

बापु : अगर मुसलमान होता तो आपके घर रहने नहीं आता।

सुकुमारन् : (**कुछ सोचकर**) तुम भूल कर रहे हो बापु !

वेलु : तो बापु माप्पिळे ! यह कहो कि तुम रास्ते में ही उस शैतान नंपियार और मुँहफट पोकर के जाल में फँस गए।

बापु : कौन किसके जाल में है, यह फिर सोचेंगे। इतना तो समझ लो कि किसी की हँसी उड़ाना अच्छा नहीं। इसका नतीजा बहुत बुरा होगा।

वेलु : हुँ ! हजार बार...

सुकुमारन् : (**रोककर**) नहीं बापु, यह हँसी-खेल की बात नहीं। तुमने बातें बहुत ही ग़लत ढंग से समझी हैं।

बापु : ठीक है। ग़लत ढंग, नासमझी, बेवकूफ़ी, ग़ैर ज़िम्मेदारी यह सब मुद्दत से मुसलमानों के सिर पर थोपे जाते हैं। हिन्दुओं के देश में फाके से तंग आकर बाहर कहीं भाग जायँ तो उसका नाम ग़लत-फहमी है, नासमझी है। अगर उसका कोई खैरख्वाह उसकी मदद करने आ जाय तो उसका नाम है किसी के जाल में फँसना। बस-बस रहने दीजिए ये चिकनी-चुपड़ी बातें।

सुकुमारन् : बापु !

बापु : जी ! अदब से पेश आइएगा वरना—

सुकुमारन् : माफ़ करना जनाब बापु ! आप इसमें एक हिन्दू-मुसलमान-फ़िसाद की कल्पना क्यों कर रहे हैं ?

बापु : जवाब साफ है। आप एक हिन्दू हैं, और मैं मुसलमान।

वेलु : तो तुम्हारा बाप कौन होता है ? काफ़िर ?

बापु : (**क्षोभ सहित**) अबे ! तुम कायदे से बातें न करोगे तो मैं भी मजबूर हो जाऊँगा। (**सुकुमारन् से**) आप अपने दोस्त से चुप रहने के लिए कहिए। वह तो नासमझ ठहरा। असली बात छिपाना उसे नहीं आता।

सुकुमारन् : तो क्या मैं तुमसे कुछ छिपा रहा हूँ और तुम्हें धोखा दे रहा हूँ ?

बापु : नहीं तो और क्या ? खेत खाली करने के लिए अर्ज़ी दी। नारियल का छिलका तक ज़ब्त कराया और अपमान किया। इन तौहीनों से जी न भरा तो मुझे गाँव से भगा दिया। अब हम न घर के रहे, न घाट के।

सुकुमारन् : मुझे अफ़सोस है कि आप और किसी के दृष्टिकोण से बातें देखने-समझने की चेष्टा कर रहे हैं।

बापु : यही प्रोपगैंडा करने का आप लोगों का तरीका है। खेत हड़प लिया आप लोगों ने। बापा को खेतिहर मजदूर बनने पर मजबूर किया। इतने से किस्सा खतम हुआ ? (**क्षोभ के साथ**) मुझे अच्छी तरह मालूम है कि अगर मैं कुछ कहने लगूँ तो आप इन्कार करेंगे। इस-लिए चुप रहना ही भला। मगर इतना तो सोचिए, मैं भी आपकी तरह नौजवान हूँ। इज़्ज़त-तौहीन का ख़याल मुझे भी है—

सुकुमारन् : आखिर हमने क्या अपराध किया है भाई ? आपने जो कुछ हुआ, उसका एक पहलू ही देखा। आइए मेरे घर। भले ही आप वहाँ न रहें, मगर अपने बापा से एक बार ज़रूर मिल जायँ। उस बुज़ुर्ग को भी इसके बारे में कुछ कहना-सुनना होगा न।

बापु : मैं कह चुका हूँ कि मैं असली मुसलमान हूँ। मेरा बापा एक हिन्दू के घर में हो यह कभी मुमकिन नहीं।

वेलु : तुम क्या बक रहे हो जी ? तो फिर वहाँ कौन बैठा है ? बाप रे ! चार-पाँच महीने गाँव छोड़कर कहीं और रह आया तो इधर कोई ऐसा इस्लाम बन गया कि क्या कहा जाय !

सुकुमारन् : चुप रहो न वेलू !

वेलु : चुप क्यों रहूँ, कब तक रहूँ ? बक-बक की भी हद होनी चाहिए।

यह छोकरा जब कहीं आवारा घूम रहा था तो माँ-बाप की मदद की और इस पर उनका बेटा किसी का सिर खाने पर तुला हुआ है।

सुकुमारन् : मुझे डर है कि कहीं—

बापु : बस-बस ! बंद करो बकवास। यह न सोचना कि मुसलमान किसी से डरने वाला है। डरना मौत है। मुसलमान की मौत एक ही बार होती है। (**मुड़कर चला जाता है।**)

(**सुकुमारन् सन्न रह जाता है।**)

वेलु : लच्छन अच्छे नहीं। वेलु की फसल काटने के लिए जिस पैर से कोई आयगा, उस पैर के साथ वापस नहीं जायगा। चाहे वह इस्लाम हो या काफ़िर।

सुकुमारन् : ऐसी बातें न करो वेलु ! इसके दिमाग़ को किसी ने फेर दिया है। हम अबूबेकर को भूल न सकेंगे। उनके दिल को दुखाना पाप है। आओ, भैया को इसकी खबर दें।

वेलु : अच्छा, चलो ! (**दोनों का जाना**)

[**यवनिका-पतन**]

तीसरा दृश्य

[श्रीधरन् नायर का घर। भीतर का दालान ! आइशा बैठकर कपड़ा-सी रही है। अचानक सीना बंद करके गहरी चिन्ता में खोई-सी बैठी है। लक्ष्मी अम्मा और पार्वती का प्रवेश।]

पार्वती : तुम आज खाना नहीं खाओगी आइशा ? (**आइशा चौंककर उसकी ओर देखती है।**)

पार्वती : (ग़ौर से देखकर) क्या तुम रो रही थीं ?

आइशा : नहीं तो—

पार्वती : आँखें अभी तर हैं और कहती हो 'नहीं तो—'

लक्ष्मी : बेटी, क्या हो गया है, तुम्हें ?

आइशा : (आँखें पोंछकर) माँ, मेरी उम्मा और बापा का खूब खयाल रखना। (रोना)

लक्ष्मी : क्या हुआ आइशा ? अम्मा-बापा को कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई। क्यों पार्वती ?

पार्वती : मैं क्या जानूँ ?

आइशा : यहाँ किसी को कोई तकलीफ़ नहीं माँ।

लक्ष्मी : फिर क्या हुआ ? जो कुछ कहना हो खुलकर कहो। तुम्हारी सुख-सुविधाओं का हमें क्या पता ? कम-से-कम बेटी, तुम तो कह सकती थीं कि—

आइशा : माँ, हमारे अपने घर में भी इतना सुख नहीं मिलेगा। हमें किसी बात की शिकायत नहीं। हमारे लिए आप लोग जो तकलीफ़ उठा रहे हैं, मैं खूब जानती हूँ।

पार्वती : तकलीफ़ किस बात की ? इधर तुम्हारे आने के बाद मुझे जो तसल्ली मिली है, वह भी कम नहीं।

लक्ष्मी : और मेरा तो यह हाल है कि तुम लोगों के आने के बाद ही मैं यह समझने लगी कि हाँ, यहाँ भी कोई रहता है। इतना बड़ा घर और उसके इक्के-दुक्के बाशिन्दे···

आइशा : तकलीफ़ इन बातों में नहीं। मगर हमारे आने के बाद आप लोगों को कितनी ही आदतें छोड़नी पड़ीं कि—

पार्वती : कौन-सी आदत ?

आइशा : जब से हम यहाँ आए गोबर नहीं पुता। शाम का भजन-कीर्तन

भी धीमी आवाज़ में होने लगा। वह भी नमाज़ के बाद ही। अब की 'ओणम' को 'तृक्काकरप्पन'[1] की पूजा न करने का भी आप लोगों ने फैसला कर लिया है।

पार्वती : इससे क्या बिगड़ा है हमारा ? गोबर न पोतने का फ़ैसला करके अच्छा ही किया। तुरन्त दादा ने फ़र्श पर सीमेण्ट लगवाया।

लक्ष्मी : और रही भजन-कीर्तन की बात, सो पहले से ही धीमी आवाज़ में होता है। बच्चे ही गला फाड़-फाड़कर नाम जपते हैं।

पार्वती : तृक्काकरप्पन की बात से शायद तुम रो रही थीं तो भैया से कहूँगी कि तृक्काकरप्पन की पूजा अवश्य होनी चाहिए। तुम फूल तोड़ लाना।...तुम अभी निरी बच्ची हो, तभी बच्चों की तरह रो रही हो।

लक्ष्मी : तृक्काकरप्पन की पूजा आदि तो निरे आचार हैं बेटी ! आज लोगों की इस तरह के आचार-विचार से श्रद्धा ही उठ गई है। अगर बाल-बच्चे घर पर हों तो ये बातें उनको मज़ेदार लगेंगी। जहाँ बाल-बच्चे नहीं वहाँ इसका क्या मतलब ?

पार्वती : मेरा ख़याल है कि तुम्हारे मन में कुछ और ही बात खटक रही है।

आइशा : कुछ नहीं जी ! बापा-उम्मा की देख-भाल करना, बस मैं इतना ही चाहती हूँ।

लक्ष्मी : और तुम्हारी देख-भाल ? वह कौन करेगा ?

आइशा : मैं भैया के पास जा रही हूँ।

पार्वती : कहाँ, बंबई में ?

आइशा : नहीं, भैया यहाँ आया हुआ है।

लक्ष्मी : तो फिर यहाँ क्यों नहीं आता ?

---

१. महाबली की प्रतिमा, जिसकी पूजा फूलों से की जाती है।

श्राइशा : सुनती हूँ यहाँ नहीं श्रायगा। उस शैतान पोकर मुतलाकी (जन्मी) के यहाँ रहता है।

लक्ष्मी : सो क्यों? बापा से भी श्राकर नहीं मिलेगा?

श्राइशा : सब गड़बड़ कर दिया है, उन लोगों ने। भैया को खूब फुसलाया है—ऐसा सुना है।

लक्ष्मी : तो तुम श्रपने बापा से क्यों नहीं कह देतीं। खैर, श्रब मैं जाती हूँ। पार्वती, तुम श्राइशा को खिलाश्रो! जाश्रो श्राइशा, खाना खा लो (**जाना**)।

पार्वती : तुमसे यह सब किसने कहा?

श्राइशा : किसी ने मुझसे कहा नहीं।

पार्वती : तो फिर तुमने जाना कैसे? बताश्रो न?

श्राइशा : किसी से न कहो तो बताऊँ।

पार्वती : नहीं कहूँगी।

श्राइशा : थोड़ी देर पहले मैं यहाँ बैठी सी रही थी। बरामदे में खड़े तुम्हारे दोनों भाई बातचीत कर रहे थे। कहते थे कि तुम्हारे छोटे भैया से बापु मिला था।

पार्वती : फिर? (**श्राइशा चुप**) कहोगी न?

श्राइशा : मैं भैया के पास जा रही हूँ।

पार्वती : यह तो कहो, उनमें क्या बातचीत हुई?

श्राइशा : काका (**भैया**) ने गुस्से में श्राकर कहा था कि मैं तुम्हारे भैया को···

(पार्वती चुपचाप खड़ी रहती है।)

श्राइशा : हमारे कारण ही तुम लोगों पर मुसीबत श्रा पड़ी। उम्मा चल-फिर नहीं सकती। बापा इतने बूढ़े हो गए कि···

पार्वती : श्राइशा, तुम मेरी बहन हो। तुम्हारे कारण हम लोगों पर कोई

विपदा नहीं आयगी। पुराने विचार के कुछ लोग अवश्य यहाँ होंगे कि जो सोचते हों कि हम दोनों परिवारों की यह साझे की खेती और मैत्री हमारे भले के लिए नहीं। इनकी परवाह तुम बिलकुल न करना। तुम्हारा काका जैसा कह रहा था, वैसा कुछ वह न कर पायगा आखिर वह भी तुम्हारा भाई है न?

आइशा : इसलिए तो मैं काका से एक बार मिलना चाहती हूँ। शायद इससे काम कुछ बन पड़े। और कुछ बना नहीं तो···

पार्वती : भला, यह भी कैसे हो सकता है कि हम तुमको उन दुष्टों के बीच जाने दें।

आइशा : कितने ही दुष्ट क्यों न हों, मेरा पूरा यकीन है कि मेरा काका मुझे टालेगा नहीं। तुमको मालूम भी है। मेरा काका मुझसे कितना प्यार करता है? बचपन में एक रोज़ मैं काका के साथ मदरसे जा रही थी कि एक छोकरे ने मेरे कपड़ों पर गन्दा पानी उलीच दिया। फिर क्या था? काका ने उस अहमक की ऐसी मरम्मत की कि उस छोकरे को किसी ने उठा ले जाकर घर पहुँचा दिया था। उम्मा अक्सर पूछा करती थी—'बेटो! तुम दोनों कैसे एक-दूसरे से बिछुड़कर रह सकोगे? अब वह भी हो गया। **(आँसू पोंछना)**

पार्वती : आइशा, तुम इस तरह बेसिर-पैर की बातें सोचकर मन मैला न करो। आओ, अब थोड़ा खाना खा लो! **(अंदर से पुकार आती है)**—"आइशा!"

आइशा : जी? क्या है बापा!

(अबूबेकर आकर-कुर्सी पर बैठता है।)

आइशा : तुम अभी नहीं सोये बापा?

अबूबेकर : सोऊँगा अभी जाकर। **(थोड़ी देर चुप रहकर)** सुना है, तुम्हारा काका आया है।

(आइशा का पार्वती की ओर देखना।)

अबूबेकर : एक तो वह अब तक इधर आया नहीं, दूसरे सुना है वह हमसे बहुत खफ़ा हो गया है।

आइशा : एक बार अगर उससे मिलने—

अबूबेकर : (टोककर) क्या कहा? जहाँ से मैं निकाल दिया गया था, अब फिर वहीं जाऊँ?

आइशा : बापा, तुम नहीं, मैं जाऊँ—यही सोच रही थी।

अबूबेकर : तुम जा सकोगी वहाँ? है इतनी हिम्मत तुममें?

पार्वती : आइशा को अकेले जाने देना ठीक नहीं।

अबूबेकर : क्यों नहीं? आइशा का भाई है न? भला हो या बुरा, भोगना उसीको पड़ेगा।

आइशा : तो मैं कल तड़के उठकर जाऊँगी। मैं उससे एक बार ज़रूर मिलना चाहती हूँ बापा!

अबूबेकर : तो उससे कहना कि वह इस्लाम में आया है मेरा बेटा बनकर। जो कुछ जानना हो, उसे जानने के बाद ही मुसलमान कोई कदम उठायगा। और सुना है तुम हमारी फ़सल काटने वाले हो। तुम इतनी-सी ताकत भी कहाँ रखते हो कि जो खुद बोओ उसे काट लो। जो बोएगा वही काटेगा।

[यवनिका-पतन]

चौथा दृश्य

[अबूबेकर के मुहाने घर का कमरा। समय रात। मेज पर लालटेन जल रही है। बापू बेचैन टहल रहा है। बीच-बीच में रुकता है। घूरकर देखता है। बड़बड़ाता है।]

बापु : ये बुतपरस्त, ये काफ़िर हमें धोखे-पर-धोखा देते जा रहे हैं। लूट-पर-लूट मचाते जा रहे हैं। कैसे? हँसते-हँसते। उनको मालूम है, हिन्दुओं को मालूम है कि मुसलमानों का सामना वे नहीं कर सकते। फिर सब लूट लेने के बाद मेहमान बनकर वे रहम दिखाते हैं कि—बापु! तुम्हारे बाप को हमने बचाया। तुम्हारी उम्मा हमारी पनाह में है। तुम्हारी बहन; (**दाँत पीसता है**) हः हः शैतानो! तुम लोगों को मैं यों छोड़ूँगा नहीं।···मेरा बापा—मेरे जाने के बाद तो उनकी बची-खुची अक्ल भी बुझ गई। इसका उन लोगों ने फ़ायदा उठाया। सारे परिवार की रोटी छीन लेना, असली हक़दार को धोखा देना,··· और इसके बाद ले जाकर कुत्तों की तरह पालना···तिस पर भी ऐसे बापा का बेटा, सब देखकर खड़ा-खड़ा ताकता रहे···नहीं, यह कभी नहीं होगा। शैतानो, तुम लोगों को मैं नहीं छोड़ूँगा।···एक पोकर काका है जो असली मुसलमान है। उसने ही सलाह दी कि मुसलमान की तरह पेश आओ। और यह बापु मुसलमान की ही तरह पेश आयगा। और यह भी दिखा दूँगा कि ज़रूरत पड़ने पर एक मुसलमान दीन के लिए कैसे फाँसी पर चढ़ता है। इस मामले में मैं जो रहनुमाई करने जा रहा हूँ, वह इस्लाम के सभी नौजवानों को जोश दिला देगी···हाय! हाय! उस पोकर काका के नाम से लोग क्या-क्या गलीज़ बातें फैला रहे हैं। धोखेबाज (**बाहर देखकर**) पूरब लाल होने लगा है। इसी तरह आज मैं काफ़िरों के खून से धरती को लाल बना

दूँगा। (**दराज खोलकर चाकू उठाता है**) हः हः ! (**अट्टहास**) हँस ले, खूब हँस ले। एक मुसलमान के हाथ में रहकर तू क्यों न हँसेगा ? हाँ, आज तू इन्तखाब का कत्था लगाकर पान खायगा। (**चाकू कमर के पट्टे में खोंसता है। चेहरा भयानक हो उठता है।**)···इस्लाम के लिए लड़ने वाले सभी मेरे साथ रहेंगे। मैं उनका हमराह हूँ। (**गुस्से से काँपते हुए प्रस्थान**)

[**यवनिका-पतन**]

पाँचवाँ दृश्य

[श्रीधरन् नायर के घर का आँगन, जिसमें मौलसिरी का एक पेड़ है। सवेरे की मद्धम रोशनी में बापु का प्रवेश। बापू धीरे-धीरे बढ़ता है।]

आइशा : (**पीछे से आकर**) काका !

बापु : (**चौंककर मुड़ता है**) कौन ?

आइशा : कल ही पता चला कि तुम आ गए। आज सुबह आना चाहती थी। नींद न आई। खिड़की से देखा तो तुम आ रहे थे। काका ! ···

बापु : (**ओंठों पर उँगली रखकर**) चुप ! मैं तेरा काका नहीं। तुम मेरे सामने क्यों फुदक पड़ीं ? (**क्रोध से**) देखो, चुपचाप चली जाओ ! मैं अभी मुसलमान हूँ। तुमसे मेरा कोई रिश्ता नहीं।

आइशा : तो काका, तुम इस वक्त आए ही क्यों ?

बापु : मैं इस वक्त तुमसे मिलने नहीं आया। और उस बूढ़े से भी नहीं जिसे तुम बापा कहकर पुकारा करती हो। मेरी और मेरे दीन की तौहीन करने वाले जो यहाँ रहते हैं, उन्हींसे मुझे अब मिलना है। इसलिए तुम अब जाओ, भीतर जाओ। मुझे नाहक तंग न करो !

आइशा : (**दृढ़ता के साथ**) काका, तुम जो काम करने के लिए आमादा हो उसका नतीजा क्या होगा, इसके बारे में तुमने कभी सोचा भी है ? तुम पहले बापा से मिलो। इसके बाद जो चाहो करो !

बापु : मैं कह चुका कि तुम अब अन्दर जाओ, मेरे काम में अड़ंगा मत डालो, वरना—

आइशा : मैं नहीं जाऊँगी। काका, तुम पहले बापा से एक बार मिल लो। घर से निकाल दिए थे तो बेसहारा पाकर जिन लोगों ने हमें अपने घर में पनाह दी उन्हींसे तुम दुश्मनी बरत रहे हो। उनकी जान खतरे में डालना चाहते हो। याद रखना, इसमें अल्लाह भी तुम्हारा साथ न देगा।

बापु : मैं अब बहस करना नहीं चाहता तुमसे। जाओ-जाओ, हटो यहाँ से। जाओगी कि नहीं ?

आइशा : नहीं जाऊँगी, कभी नहीं। मैं यहाँ लेट जाऊँगी और गला फाड़-फाड़कर चिल्लाऊँगी कि सब लोग जाग पड़ें।

बापु : (**आपे से बाहर होकर**) एक औरत की यह हिम्मत ! अच्छा ले, पहले तेरा ही किस्सा (**गर्दन पर हाथ रखता है। मगर दाएँ हाथ का छुरा अचानक गिर पड़ता है जैसे किसी ने झटका दिया हो**) मैं कहता हूँ तू जा !

आइशा : हाँ, घाव के उसी निशाने पर हाथ लगा था तुम्हारा। याद है ? उस दिन काका, मैंने तुम्हारे हाथ से एक छुरा छीन लिया था, जिससे यह घाव लगा था। उस दिन इसमें से खून बहते देखकर तुम रो पड़े

थे। आज तुम खुद उसमें से खून बहाओ, मंजूर है मुझे। पहले मुझको मारो, इसके बाद ही तुम उनको मार पाओगे। **(करुण स्वर में)** काका, अगर तुम बापा से मिलना नहीं चाहते तो कम-से-कम माँ से तो एक बार मिल ही लो। मैं उसे यहाँ ले आती हूँ।

(बापु विमूढ़वत् खड़ा रहता है।)

आइशा : हाँ, उसी माँ से, जिसने उस दिन मेरे गले से खून टप-टप गिरने पर भी तुम्हें कसूरवार नहीं ठहराया था। बल्कि मुझीको डाँटा था। तुम्हारे चले जाने के बाद वह अगर खाट छोड़कर कहीं बाहर गई हो तो बस, इसी घर तक। घर की बेदखली हो जाने पर अगर ये लोग अपने यहाँ उसे ठहरा नहीं देते तो भारी बरसात में गली में पड़ी-पड़ी सड़ जाती। आज वही उम्मा तुम्हें मरने के पहले एक बार देखने की हसरत दिल में सँजोए खाट पर पड़ी है। उससे एक बार मिलो और इसके बाद दीन या दुनिया के नाम पर चाकू चलाना !

बापु : (हताश होकर) आइशा, तुमने मुझे बेदम कर दिया। एक मुसलमान को कभी बुज़दिल नहीं होना चाहिए। मगर हाय ! आज मेरा यह क्या हाल हो गया है ?

आइशा : काका ! किसी ने तुम्हें खूब बहका दिया है। वरना तुमने यह क्यों न सोचा कि हमें भी इस बारे में कुछ तो कहना ही होगा। अभी दिन भी कितने हुए तुमको यहाँ से गये ? इस अर्से में तुम क्यों कर यह कैसे समझने लगे कि जन्म से लेकर जिस दीन व ईमान पर हम यकीन लाते आ रहे हैं, अब वह सब बेचकर हम काफ़िर हो गए हैं !

बापु : तो भी जो कुछ तुम लोगों ने किया, वह बिलकुल ठीक नहीं। रहने के लिए घर न मिला तो गली में सड़ जाना ही बेहतर था।

आइशा : काका ! मेरे बापा ने ऐसा नहीं किया। हो सकता है, यह उनकी कमज़ोरी थी। मगर इससे तुम्हारा फ़र्ज पूरा हुआ ? वह पोकर

जो है, न इन्सान है, न जानवर—

बापु : चुप ! उसको भला-बुरा न कहना। अगर वह न होता तो हिन्दू वह घर भी हड़प लेते।

आइशा : क्या कहा ? कौन हड़प लेते ?

बापु : वह घर और खेत हिन्दुओं को देना जो चाहते थे न ?

आइशा : यह झूठ तुमसे किसने कहा ?

बापु : अब किसकी बात झूठ समझूं, तुम्हारी या पोकर की ?

आइशा : तो समझो लो ऐसी-ऐसी जितनी बातें उसने कहीं, सब सफेद झूठ हैं।

बापु : अच्छा, जाने दो। इन लोगों ने खेत जो बेदखल कर दिया, वह सच है कि नहीं ?

आइशा : यह किसके खेत की बेदखली की बात कर रहे हो ?

बापु : तुम खाक जानती हो। अब जो साझे पर खेती हो रही है न—

आइशा : सब झूठ है काका। न बेदखली हुई है, और न की जायगी। खेत अब भी हमारे दखल में है। हाँ, वे भी हमारे साथ काम करते हैं। तुम्हारे चले जाने पर और कौन रहा बापा का मददगार। फसल का हिस्सा आधा-आधा—यही शर्त है। और वेलु का खेत भी है साथ। उसे किसने बेदखल किया था ?

बापु : अब मेरे मन में तरह-तरह के गुब्बार उठने लगे हैं। अच्छा, मैं बापा से बातचीत करूँगा।

आइशा : तुम्हें शैतान ने छोड़ दिया काका ! **(आँसू पोंछना)**

बापु : पता नहीं, आज तुमने मुझ पर क्या जादू फेरा ? **(आँखें पोंछकर)** उम्मा कहाँ है ? पहले उम्मा के पास जायँगे। **(दोनों का प्रस्थान)**

[यवनिका पतन]

चौथा अंक

पहला दृश्य

[नंपियार का अर्जी लिखने का कमरा। समय दोपहर। नंपियार बैठा लिख रहा है। पोकर का आना।]

पोकर : नंपियार! बापु ने हमें धोखा दिया।

नंपियार : (**कागज़ से आँखें उठाए बिना ही**) क्यों?

पोकर : मैंने उसी वक्त कहा था न कि दस्तावेज की रजिस्ट्री करने की ज़रूरत नहीं। अब क्या हुआ कि घर और ज़मीन उसके कब्ज़े में है और इतना सब-कुछ हो जाने के बाद वह उनसे जाकर मिल गया है।

नंपियार : यह भी कहीं हो सकता है भला?

पोकर : और क्या? कितना बड़ा धोखा दिया है कमबख्त ने। बड़ा मुसलमान हूँ, बाप ने जो कुछ किया, सब दीन व ईमान के खिलाफ़ है, गद्दारी है, खुद्दारी है—जाने क्या-क्या डींग मारता घूमता था वह। और आखिर हुआ क्या? दस्तावेज हथियाकर मुझे ऐसा अँगूठा दिखाया कि क्या कहूँ।

नंपियार : अब रहता कहाँ है वह?

पोकर : रहता भी वहीं है,—उन लोगों के पास ही। और कहाँ? और हमारे पल्ले क्या लगा? मुफ्त में अदालत जाना और खामखाह दौड़-धूप करना। अब पंछी हाथ से निकल गया समझो!

नंपियार : तुम घर पर दखल कर लो ! कह देना कि दस्तावेज अभी अमल में आया नहीं।

पोकर : तुम्हें कुछ रुपये दिये थे न। बापु ने दस्तावेज तैयार करते समय मुझे देने के लिए। उस दिन तुम देने लगे तो मैंने लेने से इन्कार किया था, यह सोचकर कि मेरी नीयत पर उसे शुबहा न हो। उसी समय आँखों-ही-आँखों में मैंने जता दिया था, तुम्हीं रख लो, बाद को ले लूंगा। अब चुपचाप निकालो वह पैसा। किसी को कानों-कान खबर न लगे।

नंपियार : वह रुपया अब मैं तुमको क्यों दूं ? तुम कह चुके हो एक बार कि पैसा मुझे नहीं चाहिए। बापु के सामने ही तुमने कहा था। अब वह रकम उसीको देनी है कि नहीं ?

पोकर : (**तेवर बदलते हुए**) नंपियार ! वह रकम उसने तुम्हें सौंपी थी मुझे देने के लिए।

नंपियार : और तुमने कहा भी था कि रकम मुझे नहीं चाहिए।

पोकर : (**जोर से**) खिलवाड़ कर रहे हो मुझसे ? यह पोकर खूब जानता है कि वह रकम कैसे वसूल की जाती है। मक्कार कहीं के।

नंपियार : खबरदार ! बहस बाद को होगी कि किसे किसको देना है और किसको लेना है। पहले बाहर निकल जाओ, तब बकवास करना। अगर तुम पैसे वाले हो तो यहाँ भी कोई कुम्हड़े के बतिया नहीं, मुँहफट कहीं का !

पोकर : (**उछलकर नंपियार के गाल पर थप्पड़ लगाकर**) हरामज़ादे ! क्या समझ रखा है तूने मुझे धोखा देने चला है ? निकाल पैसा।

(**धक्का-मुक्की और भीड़-भाड़**)

[**यवनिका-पतन**]

दूसरा दृश्य

[रास्ता, शाम का समय। वारियर व परङ्ङोटन का दोनों तरफ से प्रवेश ।]

वारियर : अरे, परङ्ङोटन ! तुम यहीं हो न ? ईद का चाँद बने हो यार ! अच्छा बताओ, उस दिन तुम्हें कैसे छुटकारा मिला ?

परङ्ङोटन : छुटकारा ! अरे यार उस दिन भी वहीं रहा। और दूसरे दिन भी। तीसरे दिन श्रीधरन् नायर का भाई है न, वह आया। देखते ही गला फाड़-फाड़कर रोने लगा। सोचा, अगर काम बनाने के लिए गधे के भी पैर पकड़ने पड़ें तो उसके लिए भी तैयार रहना चाहिए। यही बड़े-बूढ़ों का सिखावन है। उसी दिन जेल से छूट सका भाई !

वारियर : सुना है, आजकल अबूबेकर परिवार के साथ श्रीधरन् नायर के यहाँ रहता है।

परङ्ङोटन : हाँ, पर इससे क्या हुआ ? मैं अब वहीं से आ रहा हूँ। माप्पिळा है तो क्या हुआ ? कैसी सफ़ाई और क्या ही सुघराई !

वारियर : लगता है तुम भी टोपी पहनोगे।

परङ्ङोटन : वारियर ! अगर टोपी पहनने से अच्छा आदमी बन सकूँगा तो वह भी करूँगा।

वारियार : (साश्चर्य) हाय ! यह कैसा जादू है भगवान् ! उनके बारे में तुम्हीं तो कह रहे थे कि वे सब बेईमान हैं···

परङ्ङोटन : हाँ, मैंने ही कहा था, अपनी नासमझी के कारण। इसीलिए बचे-खुचे पैसे लेकर रामेश्वरम् गया था तीर्थ-यात्रा के लिए, जिससे ऐसा पाप आगे कभी करने को जी न करे।

वारियर : अच्छा, तुम तीर्थाटन करने गये हुए थे ?

परङ्ङोटन : अब यह भी बताए देता हूँ, सुनिए—हम लोग अब तुम्हारी

दृष्टि में टोपी पहनने वाले हो गए हैं। अबूबेकर के खेत के पूरब में मेरा खेत है न, उसे भी उन के साथ मिला लिया है। अबकी बार साझे पर खेती होगी।

वारियर : अच्छा, अब समझ गया माजरा क्या है। जहाँ मुनाफ़ा हो, पङ्ङोटन वहीं हाथ डालेगा।

परङ्ङोटन : तुम भी मिल जाओ हमारे साथ। उसके पास ही तो तुम्हारा खेत है। बातें बनाने से पेट नहीं भरेगा। समझे। और वे कोई बुरे तो हैं नहीं। वे चाहते हैं तुम भी फूलो, हम भी फूलें।

वारियर : अच्छा सोचूँगा इसके बारे में।

[**यवनिका-पतन**]

तीसरा दृश्य

[सहकारी खेती का खलिहान। एक तरफ़ धान के गड्डों के अंबार लगे हैं। दूसरी तरफ़ आइशा धान ओसाती है। उसके पीछे खड़ी-खड़ी पार्वती सूप से हवा करती है, ताकि थोथा हवा में उड़ जाय।]

आइशा : जी तुम्हें यह क्या हो गया? क्या तुम्हारे हाथ इतने कमज़ोर हैं? अगर यह बात है तो मेरे काका को ब्याहने का सपना न देखना।

पार्वती : (**हँसते हुए**) कोई काका[1] या कोयल से भी ब्याह रचता है?

१. मलयालम में 'काका' का प्रयोग काग अथवा कौए के लिए होता है।

दुनिया में मर्दों की इतनी तंगी अभी नहीं हुई है।

आइशा : (**विनोद पूर्वक**) और तुम भी तो बड़े भाई को 'चेट्टन' कहकर पुकारती हो। हम भी 'चेट्टा' (ज्येष्ठा अशुभ की देवी) को नहीं ब्याहतीं। (**दोनों हँस पड़ती हैं**)

पार्वती : अच्छा, तो यह कहो कि तुम किसी के ज्येष्ठ से शादी करना चाहती हो।

आइशा : (**मुड़कर**) तुम आज बक-बक करने की क़सम खाकर आई मालूम होती हो।

पार्वती : अब यों बातें मत बनाओ ! मैं भी भी कुछ-कुछ जान गई हूँ।

आइशा : (**हँसी रोकने की चेष्टा करते हुए**) चुप रहोगी भी या—

पार्वती : धान जल्दी-जल्दी ओसाती जाओ ! भैया आयगा तो वह तुम-को कुछ नहीं कहेगा। मुझीको फटकार सुननी पड़ेगी। (**कनखियों से आइशा को देखना। फिर दोनों का हँस पड़ना, फिर ओसाने जाना।**)

पार्वती : तो आइशा, कब होगी शादी तुम्हारी ?

आइशा : जब कोई ब्याहने आयगा।

पार्वती : बस, किसी के आने की देरी है क्या ?

आइशा : जी हाँ, बापा की लाठी सबकी पीठ के लिए मौजूं है।

पार्वती : तुम्हारा काका कब जाने वाला है ?

आइशा : इसकी तुम्हें इतनी फ़िक्र क्यों, सुनूं तो सही। हमें काफ़िर बनाने पर भी मन नहीं भरा ? अब भैया को भगा देना भी चाहती हो ?

पार्वती : काका चला जायगा तो कोयल हमें मिल जायगी न, इसलिए। अच्छा, यह कहो, तुम्हारे गहनों का क्या हुआ ?

आइशा : नंपियार सब हजम कर गया। सुना है पोकर और नपियार में

हाथा-पाई तक हो गई और अब मामला अदालत तक पहुँच गया है।

पार्वती : अच्छा ही हुआ। उनको भी अब मज़ा चखने दो मुकदमा चलाने का।

आइशा : मामला यों अदालत से फैसला सुनाने पर खत्म नहीं होगा। दोनों को शैतान पकड़ नहीं लेगा तो कहना।

पार्वती : पोकर ने घर लौटा दिया कि नहीं? फिर उसे शैतान क्यों पकड़ने लगे?

आइशा : लौटा दिया तो क्या हुआ? बापा कहते हैं कि मैं अब उस घर में रहने नहीं जाऊँगा। इसीलिए तुम्हारा भैया नया घर बनवा रहा है।

पार्वती : कुछ भी हो। अब ऐसा लगता है कि बुरे दिन टल गए।

आइशा : नये घर में चले जाने के बाद भी मैं काका के साथ यहाँ आया करूँगी।

पार्वती : काहे को?

आइशा : तुम्हें दिखाने के लिए। और किसके लिए?

पार्वती : हाँ-हाँ, मालूम हो गया। इस बहाने तुम और किसी को देखने आना चाहती हो न?

आइशा : **(नेपथ्य की तरफ़ देखकर)** अरे मेरी बछड़ी किधर गई?

पार्वती : मैं देख आऊँगी। हवा खूब ज़ोरों से चलती है न? तुम ओसाती जाओ!

(पार्वती जाती है। आइशा अकेली काम करती है। पीछे से सुकुमारन् का प्रवेश। आकर चुपचाप सूप से हवा करने लगता है।)

आइशा : बछड़ी मिली, पार्वती?

सुकुमारन् : हाँ!

आइशा : शाम होने को है। अब पता नहीं बापा कब आने वाले हैं। आते ही होंगे शायद—

सुकुमारन् : हाँ :

आइशा : तुम्हारा भाई इधर क्यों आया करता है ? उसे गीत-वीत लिखने के सिवा और कुछ आता भी है ? वह कटाई-छँटाई क्या जाने ?

सुकुमारन् : हाँ !

आइशा : फिर इस तरफ आने का मतलब ?

सुकुमारन् : (**आइशा की नक़ल करता हुआ**) आइशा से मिलने और—

(**आइशा अचानक मुड़ पड़ती है, हाथ से सूप छूट जाता है। मारे शर्म के सिर झुका लेती है।**)

आइशा : अच्छा, तुम दोनों की साजिश अब समझी।

सुकुमारन् : (**हँसते हुए**) दोनों कौन ? मैं अकेला हूँ।

आइशा : और तुम्हारी बहन जो अभी तक यहाँ थी ?

सुकुमारन् : (**सकपकाकर**) मेरी बहन ?

आइशा : (**नकल उतारती हुई**) मेरी बहन ! जैसे कुछ जानते ही नहीं।

सुकुमारन् : मैं खलिहान में काम करने आया हूँ। बहन को ढूँढ़ने नहीं।

आइशा : तो काम करो न ? यों पराई लड़कियों के पीछे क्यों पड़े हुए हो ?

सुकुमारन् : तो तुम्हारा यही ख़याल है कि तुम लड़की हो।

(**आइशा धान के गट्ठे पर बैठती है।**)

सुकुमारन् : मैं तुम्हारे पीछे खड़ा सूप जो झल रहा था, उसका नाम काम नहीं ?

आइशा : पार्वती यह काम तुमसे कहीं अच्छा कर रही थी। पता नहीं बीच में कहाँ भाग गई। नहीं, अब यह काम मुझसे नहीं होगा। अगर

सूप झलने वाला कोई न हो तो धान की छँटाई कैसे हो ?

सुकुमारन् : यह तो अच्छी दिल्लगी रही। मैं तो हवा कर ही रहा था—यह कहाँ का कायदा है कि फलाँ काम फलाँ आदमी ही करे।

आइशा : काम करने का सलीका हो तो कोई बात है। तुझ बेचारे को क्या काम करना भी आता है ?

सुकुमारन् : ठीक है। अब तो जो काम करना आता है, वही करता हूँ। लो, गट्ठे करीने से रख लेता हूँ। **(जिस गट्ठे पर आइशा बैठती है, उसीको खींच लेता है। आइशा लुढ़कने से बच जाती है।)**

आइशा : **(उठकर)** तुम तो मार-काट के लिए उतारू होकर आए मालूम होते हो।

सुकुमारन् : तो आओ न, मैं सूप से हवा करता हूँ। तुम ओसाना—

आइशा : मुझसे नहीं होगा। हवा मैं करूँगी, तुम ओसाना।

सुकुमारन् : अच्छी बात, आओ !

(सुकुमारन् सूप में धान लेकर हवा में डालता है, आइशा सूप झुलाने लगती है और सूप सुकुमारन् की पीठ पर मारती है। सुकुमारन् चौंककर मुड़ पड़ता है।)

आइशा : अरे रे, माफ़ करना। मैं तो जरा उस कौए को देख रही थी...।

(सुकुमारन् मुट्ठी-भर अनाज लेकर आइशा का 'तट्टम'[1] हटाकर सिर पर डालता है। यह सब देखती हुई पार्वती आती है। सुकुमारन् सूप डालकर डंठल एकत्रित करने लगता है। पार्वती आइशा को देखकर हँसने लगती है।)

आइशा : **(सिर से धान झाड़ते हुए)** पार्वती ! देखो न, सिर पर धान और भी है या नहीं।

पार्वती : कुछ नहीं ! अब काम शुरू करो !

---

१. सिर का रंगीन कपड़ा।

(आइशा ओसाने लगती है और पार्वती सूप झलती है। सुकुमारन् डंठल ठीक रखता है। अबूबेकर, वेलु, श्रीधरन् नायर और बापु का प्रवेश।)

अबूबेकर : क्या हाल है बच्चो ! मज़दूर सब चले गए।

पार्वती : वे सब तो कब के चले गए ! यह काम अभी खत्म होने वाला है। थोड़ा ही बाकी है।

(वेलु धान के ढेर को देखकर मुँह बाए खड़ा है।)

बापु : क्यों वेलू, मुँह बाकर क्यों खड़े हो गए ? क्या धान सब मुँह से ही नाप डालने का इरादा तो नहीं ?

(सब हँसते हैं)

वेलु : नहीं बेटा, मैं सोच रहा था—

श्रीधरन् : क्या सोच रहे थे ?

वेलु : यही कि जो अनाज का ढेर मैं देख रहा हूँ, वह सब भगवान् ने हमारे ही लिए ऊपर से उतार दिया है।

अबूबेकर : वेलु, तुमको यह देखकर अचरज हो रहा है। और यह बेजा है भी नहीं। यकीन नहीं आता कि ये सब इसी खेत में पैदा हुआ। वेलु, कितना होगा यह ?

वेलु : नौ सौ पचास या एक हज़ार के करीब होगा ही।

सुकुमारन् : ठीक-ठीक बताऊँ वेलू, ९८५ 'परा'[1] है। और १५ परा के करीब तो—

आइशा : और फिर एक ढेर छँटाई के लिए रह गया है।

अबूबेकर : देने वाला जब देना चाहता है तो छप्पर फाड़कर देता है। इसमें वेलु का कितना हिस्सा होगा ?

श्रीधरन् : ठीक एक तिहाई। खेत जो एक तिहाई है न ?

१. लकड़ी का पात्र, जिसे चावल की मात्रा जानने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

वेलु : (**हँसते हुए**) ९८ 'परा' मिला था पिछली बार।

अबूबेकर : हाँ, मुझे १५० 'परा' पूरा नहीं मिला था।

श्रीधरन् : हम बच गए।

बापु : हाँ, हम बच गए।

अबूबेकर : अब बेटा, जितना धान हो, छः और चार हिस्से के हिसाब से बाँट लो। छः तुमको, और चार हमको।

श्रीधरन् : सो क्यों ? बराबर बाँटना जो तै हुआ था ?

वेलु : हाँ अबूबेकर, वैसा ही निर्णय था।

अबूबेकर : वह कैसे हो सकता है ? तुम अभी जवान हो। कोई सुन लेगा तो मुझीको बुरा-भला कहने लगेगा। है न बापु !

बापु : हाँ बापा और वे हमारे जन्मी हैं। काम भी खूब किया था।

श्रीधरन् : जन्मी और काश्तकार अब कहाँ ? यहाँ तो अब जितने लोग हैं सब मनुष्य हैं। बीज और बैल तुम्हारे, खेती करने का तजुरबा तुम्हारा। सो बराबर बाँटा जाना ही उचित है। इसमें भी मुझे नफ़ा ही है। पूर्व निश्चय से ज़्यादा मैं कभी न लूँगा। क्यों सुकुमारन् !

सुकुमारन् : हमें एक दाना भी ज़्यादा नहीं चाहिए। जो कुछ मिला इन लोगों की मेहनत से।

अबूबेकर : यह ठीक नहीं, बच्चो !

वेलु : यारो, तुम लोग नाहक बहस क्यों कर रहे हो ? जो जितना चाहे, उतना ही ले। बाकी वहीं पड़ा रहने दे। मैं उठा ले जाऊँगा। (**सबका हँसना**)

श्रीधरन् : हे भगवान् ! तुम्हारी यह फ़सल भी ख़ूब रही। हमने जो मेंड़ खेतों के बीच से बना रखे थे उन्हें हमने ही तोड़ दिया। ये मेंड़ ही तो खेतों के बीच पानी का बहाव रोके हुए थे। आज हम यह बात अनुभव से समझ पाए।

बापु : श्रीधरन् नायर ! आपने अपने मजहबों के बीच की हदबंदी भी साथ ही तोड़ डाली, जो अच्छा हुआ। अब पानी का बहाव कुछ-कुछ इनमें भी होने लगेगा।

श्रीधरन् : बापु ! इस मामले में अभी हमें सफलता नहीं मिली है ! भगवान् करे कि इसमें भी उनका कृपाहस्त पहुँच जाय। धार्मिक विचार और आचार में भी हमें सहकारी खेती का सिद्धान्त अपनाना होगा। मगर इसके लिए खेत अभी तैयार नहीं हुआ।

बेलु : खेतिहर अगर तैयार हो तो वह खेत भी बोने लायक बन जायगा।

(आइशा आशापूर्वक सुकुमान् की ओर देखती है और सुकुमारन् आइशा को देखता है।)

श्रीधरन् : सिर्फ़ खेतिहर ही इसके लिए काफी नहीं। भगवान् भी चाहिए। खेत को उपजाऊ बनाने के लिए बरसात ज़रूरी है। जल्दबाज़ी से काम न बनेगा। **(अबूबेकर की ओर देखता है।)**

अबूबेकर : सही है लड़को ! हमें इन्तज़ार करना ही पड़ेगा।

श्रीधरन् : हम प्रतीक्षा करेंगे। सब के साथ प्रतीक्षा करते रहेंगे। आज जिस तरह सहकारी खेती से हम संपन्न हुए, वैसे ही अगली फसल में हम संपन्न नई पीढ़ी को उपजायँगे।

(सुकुमारन् और आइशा आहें भरते हैं। सब उनकी ओर देखते हैं जैसे आहें उन लोगों ने सुन ली हों। दोनों सिर झुकाते हैं।)

अबूबेकर : **(दोनों को बारी-बारी से देखते हुए)** या अल्ला, अब इसकी क्या तरकीब है !

[यवनिका-पतन]

• 'सहकारी खेती' नाटक को सर्वप्रथम 'पोन्नानि' (मध्य केरल का एक गाँव) में आयोजित एक समारोह में अक्कित्तम (केरल के प्रसिद्ध कवि), पी० सी० कुट्टिकृष्णन (प्रसिद्ध उपन्यासकार) आदि ने अभिनीत किया था। उस समय दर्शकों में जिस आलोड़न और तन्मयता का संचार हुआ था, वह असाधारण था।

• 'सहकारी खेती' जीवन्त ग्रामीण जन-जीवन की ओर ढलता झरोखा है।......इडस्सेरी ने अपने परिचित या दृष्टपूर्व कुछ व्यक्तियों की अनुभूति या श्रुतपूर्व कुछ तथ्यों को प्रकाश में लाकर उन सबके ऊपर कविता का वातावरण तान लिया है और उसमें एक आत्मा को फूंक दिया है। 'सहकारी खेती' के सभी पात्र पोन्नानि और उसके आस-पास के निवासी हैं।

• 'सहकारी खेती' का हर पात्र रक्त-मांसमय देह व आत्मा से युक्त मानव है, जो घात-प्रतिघातों के बीच से उभर आने वाले व्यक्तित्व के कारण अविस्मरणीय है। वे नाटककार के सूत्र-संचालन के अनुसार नाचने वाले पुतले नहीं।

• 'सहकारी खेती' में एक सशक्त कथानक है। कई समालोचकों की राय में यह जरूरी नहीं कि नाटक में कोई कथानक रहे। कुछ प्रसिद्ध नाटककारों ने निरे वार्तालाप वाले दृश्यों से शिथिल कथानकयुक्त नाटक भी रचे हैं। मगर यह निर्विवाद है कि शाश्वत मूल्य वाले उत्तम नाटकों का कथानक भी उत्तम होता है। प्रस्तुत नाटक का कथानक भी एक नीति-कथा की तरह सरल-सहज और जीवन के प्रकृत तथ्यों पर आधारित है।